चौधरी साहब के साथ तिहाड़ जेल में

□ पी० एन० सिंह

२२ अगस्त, सन् १९७५ की रात्रि में मुझे व मेरे मित्र के० के० गुप्ता को लाल किले से तिहाड़ जेल में भेज दिया गया था। जेल के कार्यालय में पहुँचते ही एक परिचित सा चेहरा दिखाई दिया। वे सज्जन दिल्ली प्रशासन के एक अधिकारी थे और उस समय तिहाड़ जेल में उप-अधीक्षक के पद पर कार्यरत थे। हँसते हुए बड़े प्यार से उन्होंने हमारे पहुँचने का स्वागत किया और कहा कि कई दिनों से आप लोगों के आने की खबर थी। मेरे यह कहने पर कि किसी अच्छी जगह रखियेगा,तो वे बोले कि मैं अपनी तरफ से कोशिश करूँगा। थोड़ी देर लिखने-पढ़ने की आवश्यक कार्यवाही समाप्त करने के पश्चात् वही अधिकारी किसी अन्य अधिकारी तथा दो वार्डरों को साथ लेकर हम लोगों को जेल के अन्दर बैरेक्स की ओर ले चले। काफी दूर चलने के बाद मुझे एक लोहे के दरवाजे के पास रोक लिया गया और मेरे मित्र के० के० गुप्ता को अन्य अधिकारी व एक वार्डर के साथ आगे की तरफ ले जाया गया। लोहे का दरवाजा खुला दोनों ओर बीस-बीस चक्कियों की कतार बनी हुई थी। उन दोनों के बीच से जो गली जाती थी उससे होकर अन्तिम छोर पर बायीं ओर मुड़ते ही दूसरे नम्बर की चक्की में मुझे बन्द कर दिया गया। एक टूटी सी चारपायी, जिसके ऊपर एक दरी व एक बेढब गद्दे के ऊपर एक चादर पड़ी हुई थी, जिसके ऊपर एक फटी हुई मच्छरदानी भी लगी थी। मैं बैठकर बहुत देर तक उस परिस्थिति के बारे में सोचने के लिए मजबूर हो गया था। अगल-बगल में रहने वाले किसी भी व्यक्ति को मुझसे मिलने की आज्ञा नहीं थी। केवल दो समय मेरी चक्की का दरवाजा तब खुलता था, जब 'बी' क्लास का मशक्कती चाय, खाना आदि लेकर आता था। काफी समय तक यही पता न चल सका कि इस जेल में कौन कहाँ रह रहा है।

अन्याय से टक्कर : चक्की का चक्कर

अक्टूबर में जब मुझे बगल में रहने वाले अन्य लोगों से मिलने-जुलने की अनुमति मिल गयी और चक्की का दरवाजा प्रातः ५ बजे से शाम के ८ बजे तक खुलने लगा, तब पता चला कि १४ नम्बर के वार्ड में जिसको कि 'बी' क्लास कहा जाता है, चौधरी चरण सिंह, सरदार प्रकाश सिंह बादल तथा सरदार आत्मासिंह और जयपुर के राजकुमार श्री भवानी सिंह रहते हैं। थोड़े ही दिनों के बाद चालीस चक्की के हेड वार्डर के व्यवहार से कुपित होकर मैं अपने को न संभाल सका और एक दिन उसे तीन-चार थप्पड़ लगा दिये। परन्तु उस घटना से मुझे स्वयं ही आत्मग्लानि हुई और प्रायश्चित हेतु पाँच दिनों के अनशन का नोटिस मैंने जेल अधिकारी को दे दिया। उस अनशन के दौरान ही मुझे जेल के अस्पताल में भेज दिया गया।

दो अक्टूबर को १५ नम्बर वार्ड में जो लाठीचार्ज हुआ और जब कराहते हुए घायल राजनंतिक बन्दियों को स्ट्रेचर पर लाद-लादकर जेल के अन्दर पहुँचाया जा रहा था, उस समय मैं भी जेल के अस्पताल में ही था। वह दृश्य आज भी मेरी आँखों के सामने झूम जाता है। उस अनशन की समाप्ति के थोड़े दिनों के बाद ही जेल अधीक्षक ने कहा

कि जयपुर के राजकुमार श्री भवानीसिंह पैरोल पर चले गये हैं। उनकी चक्की मैंने आपके लिए रख ली है। उसमें ताला लगवा दिया है। आप वहीं चलकर रहें। मैंने थोड़े दिनों तक सोचने का मौका ले लिया था।

इसी बीच में के० के० गुप्ता को भी बारह चक्की से, जिसे जेल की भाषा में 'कोरा टिन' कहा जाता है, मेरे पास चालीस चक्की में भेज दिया गया था। साथियों के इस सुझाव के पश्चात् कि बी क्लास में जाकर मुझे चौधरी चरण सिंह, सरदार प्रकाशसिंह बादल आदि के साथ रहकर राजनीतिक गतिविधियों की जानकारी प्राप्त हो सकेगी, मैंने वहाँ जाना स्वीकार कर लिया था। अक्टूबर, सन् १९७५ का ही कोई दिन था, जब मुझे व के०के० गुप्ता को १४ नम्बर वार्ड 'बी' क्लास में भेज दिया गया। हम दोनों का सामान तो धीरे-धीरे पहले ही भेज दिया गया था।

लगभग शाम के ७ बजे का समय होगा, जब हम दोनों बी क्लास में पहुँचे, चारो ओर सन्नाटा था। जेल के नियमानुसार १४ नम्बर में रहने वाले किसी भी राजनीतिक बंदी या कैदी को यह पता नहीं था कि आज हम लोग यहाँ आ रहे हैं। अन्दर घुसते ही बैरकों में रहने वाले लोग जो ७ बजे के बाद दरवाजों के अन्दर बन्द हो जाते थे, अन्दर से ही घूर-घूर कर हम लोगों को देखने लगे कि ये दो नये मेहमान कौन आ गये हैं ? मुझे भी कुछ ऐसा ही लग रहा था कि जैसे पुराना घर छोड़कर हम किसी नये घर में आ गये हों, जहाँ की मिट्टी, आब-हवा व लोग बिलकुल ही अनजाने-अनजाने से लग रहे थे। हमारा सारा सामान चक्की के बाहर पड़ा हुआ था।

जब हमने चक्की में प्रवेश किया, तो यह देखकर बड़ी हैरानी हुई कि चक्की के ऊपर की टंकी से पानी बहता हुआ एक ओर की दीवार में पूरी तरह से सीलन पैदा कर चुका है। चक्की के बाहर दरवाजे पर ही आमतौर से वार्ड में आने-जाने व काम करने वालों के लिए सामूहिक शौचालय बना हुआ है। चक्की के अन्दर से अजीब प्रकार की नमी युक्त गन्ध आ रही थी। मुझे जेल के अधीक्षक श्री रामनाथ शर्मा पर बहुत ही क्रोध आ रहा था कि क्या इस चक्की की इतनी सराहना करके मुझे यहाँ लाया गया है ? क्या यह सही है कि इस चक्की में जयपुर के भवानीसिंह जी को रखा गया था ? मुझे शंका हुई और यह जानने के लिये कि असलियत क्या है, मैं बैरेक की ओर मुड़ पड़ा। एक बैरेक के नजदीक जाकर मैं बाहर ही सरिये के जंगले के साथ खड़ा हो गया। अन्दर से कई लोग बड़ी उत्सुकता के साथ मेरे पास आकर जँगले के दूसरी ओर खड़े हो गये और यह जानने के बाद कि मेरा नाम पी० एन० सिंह है, वे लोग स्वयं ही कहने लगे कि आपके लिये तो भवानीसिंह वाली चक्की खाली रखी गयी थी ; आज सुबह से ही उसकी बड़ी सफाई हो रही थी। पर शाम को इस वार्ड का मुंशी अपना सारा सामान अपनी चक्की से उठाकर आप वाली चक्की में रख गया। आपके लिये उसने अपनी चक्की खाली छोड़ दी है। इतना सुनना था कि मैं उस चक्की की ओर गया। मुंशी अपने सामान आदि को ठीक कर रहा था। साथ ही एक ओर सरदार जी थे, जो दिल्ली पुलिस के कोई इसपेक्टर थे और कत्ल के केस में हवालाती के रूप में बी क्लास में रह रहे थे। मुंशी से उनकी काफी अच्छी मित्रता थी, अतः दोनों साथ ही रहने लगे थे।

मेरे यह कहने पर कि मुंशी जी आप अपना सामान लेकर अपनी चक्की में जाइये और जिसमें रहने के लिये मुझे जेल अधीक्षक ने बुलाया है, मैं उसी में रहूँगा, उसने बहुत हँसते हुए मुझे जवाब दे दिया कि आप पहले ही व्यक्ति है, जिसने जेल के अन्दर मुझे इस तरह का हुक्म दिया है। जेल के अधिकारी की भी इतनी हिम्मत नहीं है, जो मुझे ऐसा कह सके। मुझे भी कहना पड़ा कि अच्छा तो अब देखना यही है कि आप यहाँ रहते है या मैं रहता हूँ। इतना कह कर मैंने उस वार्ड के हेडवार्डर से यह पूछा कि जेल अधीक्षक ने मुझे कहाँ रहने के लिये कहा है ? हेडवार्डर ने भी मुझे यह कहकर टाल दिया कि दोनों चक्कियाँ तो एक जैसी ही हैं। आप इसी में रह लीजिये। अंत में मैंने लिखित रूप में जेल अधीक्षक को यह भेजा कि मेरे साथ ऐसा हो रहा है और मैं चक्की में नहीं जाऊँगा। किन्तु इसी बीच जेल के चक्कर जमादार, जिसका रौब जेल के अन्दर जेलर के बाद दूसरे नम्बर पर होता है, बल्कि कुछ मायने में उससे भी अधिक, उससे लेकर जितने भी जेल अधिकारी आये वो मुझे ही समझाने में लगे हुये थे कि जो चक्की खाली है अब आप उसी में रह लीजिये। अंत में मैं जेल अधीक्षक के

समक्ष पेश हुआ। इस प्रकार काफी रात गुजर गयी और अन्ततः यह निर्णय हुआ कि मुंशी जी उस चक्की को खाली करें। पूरे बी क्लास के लोग जो उस मुंशी के आतंक से भयभीत रहते थे, पहली बार उसकी पराजय से बहुत ही उत्साहित हुए। बाद में पता चला कि यह मुंशी अपने बाप को गोली मार कर आया हुआ है और उसी तरह का रौब-दाब पूरी बैरक के अन्दर रखे हुए है। वैसे तो चूँकि १४ नम्बर का यह वार्ड तिहाड़ जेल की बी क्लास का एक ही वार्ड था, इसलिए जितने भी नामी कैदी, जिनको बी० क्लास की सुविधायें मिली थीं, इसी में रह रहे थे– उदाहरणतया डा० एन० एस० जैन (विद्याजैन हत्या काण्ड के अभियुक्त) श्री डिसूजा (सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के अधिकारी) और छः लाख की बैंक-डकैती काण्ड के अभियुक्त इत्यादि।

चौधरी साहब से भेंट

मुंशी ने जब भवानी सिंह वाली चक्की खाली कर दी, हमने अपना सामान उसमें रखा और याद नहीं कि उस दिन खाना खाया या नहीं। दोनों मित्र बातें करते-करते सो गये थे। प्रातः ५ बजे उठकर हम दोनों ने सामने वाली बैरक के बगल वाले मैदान में साथ-साथ टहलना शुरू किया। रात को यह पता चल गया था कि साथ वाली चक्की में चौधरी चरण सिंह रह रहे हैं। करीब आधे घण्टे के बाद चौधरी साहब के स्नानगृह की बत्ती जली। अन्दर से वे हम लोगों के टहलने की आवाज भी सुनते रहे, ऐसा उन्होंने बाद में हमें बताया। थोड़ी देर बाद वे चक्की का दरवाजा खोलकर बाहर आये और हम दोनों को आवाज दी, 'कौन है ?' हम दोनों ने उनके पास जाकर नमस्कार करके अपना परिचय दिया और वहीं से शुरूआत हुई चौधरी साहब के निकट रह कर जेल-जीवन की कहानी की।

हम दोनों को लेकर वे अपनी चक्की के अन्दर गये और प्रारम्भिक परिचय के तौर पर किस प्रकार से हम लोग गिरफ्तार हुए, लालकिले से लेकर ४० चक्की व १२ चक्की में हम लोगों को कैसे-कैसे रखा गया इत्यादि बातों पर घंटों चर्चा होती रही। काफी अफवाहें हम लोगों को लेकर जेल में समय-समय पर फैलती रहती थीं, इसलिए वे भी हम लोगों से मिलने के लिये काफी उत्सुक थे और हम लोगों से मिलकर वे काफी संतुष्ट दिखायी दिये।

सादा-जीवन, संकल्प अटल

जैसा कि मैंने पहले बताया है कि बी क्लास का मुंशी सरदार एक कातिल कैदी ही नहीं था, बल्कि प्रकृति से भी शैतान तबीयत का था। बी क्लास में जो खाना बनता था, उसकी देखरेख में बनता था। बी क्लास के सारे कैदी एक साथ, एक ही स्थान में जो खाना खाते होंगे, उसका सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है। बिना घुली उड़द या मूंग की दाल, जिसकी कभी सफाई नहीं होती थी, बाजार से बोरियों में आये मिल के आटे की रोटियाँ एवं मोटा चावल, सब्जी के नाम पर आलू या किसी अन्य के साथ निरा पानी। ऐसा खाना वह सरदार मुंशी चौधरी साहब के पास मशक्कती द्वारा भिजवा दिया करता था। सरदार प्रकाशसिंह बादल व सरदार आत्मासिंह चूँकि माँसाहारी थे, इसलिए स्टोव या हीटर आदि पर अपने लिए कुछ अलग से बनवा लेते थे। चौधरी साहब के परिवार के लोग, जिनमें उनकी पत्नी श्रीमती गायत्री देवी एवं उनके दिल्ली में रहने वाले दोनों दामाद व पुत्रियाँ थे, उनके खाने के बारे में बहुत चिंतित रहा करते थे। अक्सर वे सरकारी अनुमति लेकर चौधरी साहब से मिलने के लिए आया करते थे। चौधरी साहब ने मुझे बताया था कि उनकी पुत्रियाँ और घर के अन्य लोगों को हमेशा यह डर बना रहता था कि उन्हें जहर न दे दिया जाये।

मुझे खाना बनाने हेतु मशक्कती मिल गया, जो दिल्ली परिवहन निगम का एक वाहन-चालक परमानन्द था, जिसे बस-दुर्घटना के कारण जेल की सजा हो गयी थी। हिमांचल प्रदेश का रहने वाला परमानन्द प्रकृति से सौम्य, समझदार आज्ञा-पालक और साफ-सुथरा रहने वाला था। जो भी कार्य परमानन्द को एक बार कहा जाता था, उसे और भी अच्छा करने के प्रयास में वह लगा रहता था। घर से मैंने हीटर मँगवा लिया था। खाने हेतु आटा, चावल, दाल की अब हमें घर से मंगाने की अनुमति मिल गयी थी। चौधरी साहब के लिये दिल्ली के गाँव के लोग, जो वहाँ जेल मे थे, मक्की व चने का आटा समय-समय पर मँगा दिया करते थे। खाना मेरी चक्की के बाहर वाले बरामदे में ही बना करता

था। मेरी भी रुचि स्वयं खाना बनाने में हो गयी थी और इस प्रकार कुछ समय अच्छा गुजर जाया करता था। कढ़ी तो मेरे यहाँ की इतनी मशहूर हो गयी थी कि दूसरे बैरक के लोग जब कभी आते, तो एक बार कढ़ी खाने के बाद औरों को भी कहे बिना नहीं रह पाते थे। इस प्रकार से समय-समय पर सुरेन्द्र मोहन (जनता पार्टी के वर्तमान सचिव), दिल्ली के मदनलाल खुराना और अन्य लोग खाना खाने हेतु आ ही जाया करते थे। चौधरी साहब अक्सर खुश होकर कहा करते थे, 'परमानन्द इतना अच्छा खाना मत खिलाया करो, क्योंकि घर जाकर चौधरानी जी से झगड़ा होगा।' पंजाब के वर्तमान मुख्यमन्त्री श्री प्रकाशसिंह बादल एवं पंचायत व विकास मन्त्री सरदार आत्मासिंह अक्सर कढ़ी, मक्की तथा चने की रोटी की दावत पर हमारे वहाँ आया करते थे और इन्हें अपनी रसोई में बनने वाले मुर्गे से अच्छा बताते थे। चौधरी चरणसिंह जी को खाने के साथ हरी मिर्च बहुत ही पसन्द है। पाँच-छः हरीमिर्च बारीक कटवाकर दाल व सब्जी में खाते समय डाल लेते थे। खाने में दूसरी चीजें, जो उन्हें पसन्द हैं, उनमें खीर तथा देशी घी की पूरी मुख्य हैं।

डा० जे० पी० सिंह और उनकी पुत्री जब भी मिलने आते थे, तो खीर तथा पूरी अवश्य ले आते थे। रात्रि में खाना खाने के बाद एक गिलास दूध चौधरी साहब को अवश्य चाहिए। इन सब चीजों का प्रबन्ध मेरे बी क्लास में आने के बाद समुचित रूप से हो गया था। अब हम लोगों द्वारा सब कुछ स्वतः प्रबन्ध कर लेने से बी क्लास का सरदार मुंशी अलग-थलग-सा पड़ गया था और चिढ़ने लगा था। बी क्लास में रहने वाले जितने भी बन्दी थे, चाहे वे राजनीतिक हों या अपराधी सभी चौधरी साहब की इज्जत करते थे। कुछ प्रमुख लोग जो वहाँ थे, उनमें सरदार प्रकाश सिंह बादल, सरदार आत्मासिंह के अलावा सतना, मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध वैद्य एवं तान्त्रिक पण्डित श्री पूर्णानन्द जी, उनके भतीजे श्री गंगाप्रसाद तथा कुछ आनन्दमार्गियों—जैसे आचार्य नितेश जी, विश्वनाथ जी, दीनदयाल जी, नित्य बोधा नन्द, राय साहब, नारंग साहब थे। ये सभी लोग चौधरी साहब का खूब आदर किया करते थे। पर सरदार मुंशी इतना शैतान था कि चौधरी साहब पर भी कुछ न कुछ व्यंग कसा करता था। एक दिन चौधरी साहब जब अपनी चक्की से मेरे यहाँ खाना खाने आ रहे थे, तो बीच में ही वह मिल गया और कहने लगा, 'चौधरी साहब कहीं आप उत्तर-प्रदेश के मुख्य मन्त्री पुनः हो गये तो हमें भूल तो न जाओगे?' चौधरी साहब को यह बात बुरी लगी और क्रोध में यह कह कर चले गये, 'क्या तुम समझते हो यह बहुत बड़ी बात है?' पर जेल की मजबूरी ऐसी होती है कि इससे अधिक उसे कुछ कहा भी नहीं जा सकता था।

एक दिन उसने मेरे साथ कुछ अभद्र व्यवहार किया, जिसको लेकर मैंने उसे बहुत डाँटा और लिखित रूप में उसके तबादले की शिकायत कर दी। जेल अधीक्षक ने बुला कर उसे कुछ कहा, जिसके लिए वह प्रकाशसिंह बादल व सरदार आत्मासिंह से सिफारिश करने हेतु जा पहुँचा। सरदार आत्मासिंह भी उसके व्यवहार से काफी नाराज थे। मुंशी अगर किसी की कुछ परवाह या सम्मान करता था, तो वह सरदार प्रकाशसिंह बादल थे। उसका कारण यह था कि बादल साहब मुर्गा आदि खाने पर काफी खर्च करते थे और मुंशी भी, उसमें से कुछ पा लेता था। बादल ने उससे कहा कि पी० एन० सिंह को मनाने हेतु चौधरी साहब से बात करे। अंत में न चाहते हुए भी मुंशी को चौधरी साहब के पास सिफारिश कराने जाना पड़ा, क्योंकि जेल अधीक्षक ने साफ-साफ उसे बता दिया था कि अब तुम बी क्लास के मुंशी नहीं रह सकते। जेल के अंदर मुंशी या नम्बरदार के पद से हटाए जाने का मतलब यह होता है कि जैसे रिश्वतखोर थानेदार को साधारण सिपाही बनाकर लाईन में भेज दिया जाता है। मुंशी चौधरी साहब के पास सिफारिश के लिए पहुँचा। चौधरी साहब तो पहले ही उबले पड़े थे, उन्होंने उसे बहुत डाँटा और कहा कि यदि तुम्हें सचमुच अपने व्यवहार पर पश्चाताप है और मुंशी बने रहना चाहते हो, तो सीधे जाकर पी० एन० सिंह से ही माफी माँगो। उसके बाद मैं भी कह दूँगा। अंत में उसको मुझसे ही माफी माँगनी पड़ी। उस दिन के बाद वह मुंशी एक बदला हुआ इंसान बन गया।

निजी मान्यतायें, विभिन्न रुचियाँ

चौधरी साहब को ताश खेलने का बहुत शौक था। दोपहर का खाना खाने के बाद आधा घण्टा आराम किया करते थे। उसके बाद यदि हम लोगों को पहुँचने में थोड़ी

देर भी होती तो अपने मशक्कती राजेन्द्र को, जो जेल में 'डालमिया' के नाम से मशहूर था, हमें बुलाने भेज देते थे। उधर से प्रकाशसिंह बादल और बी क्लास में ही झूठे कत्ल के अभियोग में हवालाती के रूप में रह रहे चौधरी स्वरूप सिंह, जो अब वकालत कर रहे हैं एवं पंडित प्रकाशचन्द चौधरी साहब की चक्की के बाहर वाले बरामदे में बिछे हुए गद्दे पर ताश खेलने हेतु बैठ जाया करते थे। तीन-चार घंटे ताश खेलने में ही नित्य व्यतीत होते थे। चौधरी साहब ताश में हुक्म की बेगम छकड़ी खेलने के शौकीन थे। वे अक्सर कहा करते थे कि मैं तो लखनऊ के अन्दर भी शाम को सात बजे के बाद अपनी बेटियों के साथ नित्य ही ताश खेला करता था। चौधरी साहब अपनी बेटियों को याद करके प्रायः भाव-विह्वल हो जाया करते थे। हालाँकि उनका एक पुत्र भी है, जो अमरीका में रहता है। उसी बीच भारत आने पर वह जेल में मिलने भी आया करता था, पर चौधरी साहब का अधिक स्नेह अपनी बेटियों के ऊपर है, ऐसा उनकी नित्य की बातों एवं व्यवहार से लगा करता था।

चौधरी साहब की मुख्य व्यस्तता जेल के अन्दर किताब लिखने की थी। एक किताब जो जेल आने के पूर्व ही वे प्रारम्भ कर चुके थे, उसे लिखने में वह अपना अधिक से अधिक समय लगाया करते थे। लिखने का कार्य प्रातः पाँच बजे से लेकर आठ साढ़े आठ तक तथा रात्रि में आठ बजे के बाद किया करते थे। उस किताब को लिखने के लिए बाहर से भी काफी सामग्री वे मंगाया करते थे। किताब अंग्रेजी-भाषा में लिख रहे थे, इसीलिए उसका नाम 'बैक टू गाँधी' या 'रिटर्नड टू गाँधी' रखने का विचार कर रहे थे। जब भी परिवार के लोग आते थे, लिखा हुआ भाग बाहर टाइप हेतु भेज देते थे। यह क्रम, जब तक वे जेल में थे, बराबर चलता रहा।

चौधरी साहब को ज्योतिष व हस्तरेखा में पूर्ण विश्वास है और इसकी जानकारी भी वे पर्याप्त रखते हैं। ज्योतिष की जानकारी हेतु जितनी भी पत्रिकाएँ इस सम्बन्ध में अच्छी से अच्छी निकलती हैं, उनको वे अपने दामाद डा० जे० पी० सिंह के द्वारा जेल में भी मँगाया करते थे। ज्योतिष के द्वारा आपात्कालीन स्थिति के बारे में भी वे अपना अनुमान समय-समय पर बताया करते थे। मैं नहीं कह सकता कि अनुमान कहाँ तक सही निकले। ज्योतिष के अनुसार चौधरी साहब का यह दृढ़ विश्वास है कि वे अपनी जिन्दगी के ११५ वर्ष पूरे करेंगे। ज्योतिष जानने वाले देश के कुछ ज्योतिषियों का भी वे सम्मान और विश्वास करते हैं। अक्सर वे कहा करते थे कि एक बार मैं इस देश को नील नदी से लेकर तिब्बत के उत्तरी छोर तक तथा श्रीलंका के तट से लेकर कश्मीर के अन्तिम छोर तक देखना चाहता हूँ। पर इस सम्बन्ध में इस तथ्य से भी पूर्ण आश्वस्त हैं कि ऐसा होना सम्भव नहीं लगता।

एक मंच की ओर

जेल में चौधरी साहब के रहते ही जो सबसे महत्वपूर्ण बात हुई वह यह कि तिहाड़ जेल में रह रहे अन्य नेताओं के सम्पर्क से ८ फरवरी सन् १९७५ को यह तय हुआ कि आपात्स्थिति से देश को उबारने का एक ही रास्ता है और वह यह कि सभी दलों को मिलाकर एक दल बनाया जाये। यह बैठक तिहाड़ जेल के १४ नम्बर वार्ड बी क्लास में ही आयोजित हो पायी थी; जिसकी अध्यक्षता चौधरी चरण सिंह ने ही की थी। इस बैठक में जनसंघ से नानाजी देशमुख लाला हंसराज गुप्त, तत्कालीन मदरलैंड के एडीटर श्री मलकानी तथा सोशलिस्ट पार्टी के सुरेन्द्र मोहन, अकाली दल के सरदार प्रकाशसिंह बादल व सरदार आत्मासिंह शामिल थे। सुरेन्द्रमोहन को जनसघ के मिलने पर राष्ट्रीय स्वयं सेवक-सघ, विद्यार्थी-परिषद् एवं जनसघ के श्रमिक संगठन आदि के बारे में कुछ शका थी। फिर भी कुल मिलाकर यह निर्णय हुआ कि इसके अलावा कोई दूसरा चारा नहीं है। मैं निःसकोच भाव से कह सकता हूँ कि इस बैठक को सफल करा पाने क लिए मुझे कई महीने प्रयास करना पड़ा था। चौधरी चरणसिंह एव प्रकाशसिंह बादल जेल के अस्पताल में नहीं जाते थे। अस्वस्थ होने पर डाक्टर वार्ड मे ही उन्हें देखने आते थे। पर हम सबने एक दूसरे से मिलने का एकमात्र स्थान तिहाड़ जेल के अस्पताल को बना लिया था। वहीं पर मैं चौधरी साहब का संदेश नानाजी देशमुख एवं सुरेन्द्र मोहन आदि को देता था और उन लोगों का सदेश चौधरी साहब तक पहुँचाता था। क्योंकि एक दूसरे के वार्ड में जाकर मिलने की सुविधा नहीं थी। सोशलिस्ट पार्टी एवं कांग्रेस (पुरानी) की ओर से कोई निश्चित सूचना न आने

पर चौधरी साहब ने नानाजी देशमुख को मेरे द्वारा यह भी कहलवाया था कि बाकी दल बाद में शामिल होंगे। पहले जनसंघ और भारतीय लोकदल का विलय घोषित कर दिया जाये; पर नानाजी देशमुख को इसमें कुछ संकोच था और इसलिए यह घोषणा नहीं हो सकी थी।

धुन के धनी, सदा निर्भय

एक दिन चौधरी साहब परिवार के लोगों से मिलकर लौटने के बाद बता रहे थे कि चौधरानी व बेटियाँ बहुत घबरायी हुई थीं, तो चौधरी साहब ने उनको यहाँ तक कह दिया था कि अगर तुम लोग चाहते हो, तो मैं आज ही श्रीमती गाँधी को पत्र लिखे देता हूँ और वे मुझे रिहा कर देंगी। इस पर सबने कहा था कि ऐसा करने के लिए हम लोग नहीं कहेंगे। चौधरी साहब के परिवार के लोगों को सबसे अधिक घबराहट यह थी कि श्रीमती गाँधी के बारे में आम लोगों की यह धारणा बनती जा रही थी कि बड़े नेताओं को जेल में खाने के साथ धीमा जहर दिया जा रहा है। चौधरी साहब ने बताया कि मैंने घर वालों को समझा दिया है कि अब तो खाना पी० एन० सिंह की देख-रेख में उनका मशक्कती परमानन्द बनाता है, जो स्वयं बहुत ही भला आदमी है। इस बात से घरवालों को काफी संतोष हुआ था।

एक घटना आज भी याद है। चौधरी साहब अपने परिवार के लोगों से मिलने के लिए ड्योढ़ी में गये हुए थे। वहीं पर महारानी सिंधिया (जिन्हें जनता पार्टी आज राज्य सभा का सदस्य बनाने जा रही है) अपने परिवार के लोगों के साथ मिल रही थीं। उन्होंने चौधरी साहब से कहा था, "चौधरी साहब अब कुछ नहीं हो सकता। अच्छा यही है कि आप श्रीमती गाँधी से बात करके उत्तर प्रदेश का मुख्य-मन्त्री पद ले लीजिये।" चौधरी साहब ने वहाँ से आने के बाद हम लोगों को बताया था कि महारानी सिंधिया को मैं एक मजबूत इरादे वाली महिला समझता था, पर यह तो इस प्रकार की बात मुझसे कह रही थीं।

अगाध-विश्वास के सागर

चौधरी साहब के तिहाड़ जेल के बारे में लिखते हुए बात अधूरी रह जायेगी, यदि मुंशी राजेन्द्र 'डालमिया' (जेल के लोग उसे इसलिए 'डालमिया' कहा करते थे, क्योंकि उसने देश के जाने-माने उद्योगपति डालमिया के दिल्ली-निवास से चोरी की थी और इसी की सजा में वह जेल भुगत रहा था।) की चर्चा न की जाये। चौधरी साहब की सेवा राजेन्द्र बहुत मन लगाकर करता था। सिर दबाना, पैर दबाना, कब गर्म पानी की आवश्यकता है, कब नहाना है आदि बातों का ध्यान बहुत तत्पर होकर रखता था। चौधरी साहब भी उसके ऊपर पूर्ण विश्वास करते थे। चौधरी साहब के बक्से की चाबी, जिसमें अन्य सामान के साथ रुपया पैसा भी रहता था, राजेन्द्र के पास ही रहती थी। किस सामान की कब जरूरत है? उसी के अनुसार वह जेल की कैंटीन से क्रय कर लेता था और एक-एक पैसे का हिसाब बहुत ईमानदारी से रखता था। विश्वास नहीं होता है ऐसे लोग जेल के बाहर की दुनिया में किस प्रकार से चोरी जैसे अपराध करते हैं। इस बात से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि परिस्थितियाँ व्यक्ति को अपराध करने पर मजबूर कर देती हैं।

कुलवन्त कुमार गुप्ता, जो आजकल मेरे साथ ही सदस्य महानगर परिषद् हैं, जेल-सुधार-समिति के भी सदस्य हो गये हैं। मुझे बहुत आश्चर्य हुआ कि राजेन्द्र पिछले दिनों पुनः किसी अपराध में जेल आया हुआ है। यह बात तब पता चली जब श्री के० के० गुप्ता जेल का निरीक्षण करने पिछले दिनों वहाँ पर गए हुए थे।

अति उदार विशाल-हृदय

एक और घटना उल्लेखनीय है, जो चौधरी साहब के व्यक्तित्व की उदारता व बड़प्पन को उजागर करती है। वह यह कि दिल्ली जेल में किसी दिन किसी ऐसी बात पर कुलवन्त कुमार गुप्ता को चौधरी साहब ने डाँट दिया था, जिसको बाद में उन्होंने यह समझा कि उचित नहीं था। इसके लिये लिखकर के० के० गुप्ता से उन्होंने अफसोस व्यक्त किया और क्षमा माँगी। उस बात ने के० के० गुप्ता और मेरे दिल में उनके लिए एक बहुत बड़ा स्थान बना लिया।

अनजाने जुदाई, सिंह की रिहाई

७ मार्च सन् १९७६ को अचानक खबर आयी कि चौधरी साहब को जेल की ड्योढ़ी में बुलाया गया है। प्रातः आठ-नौ बजे का समय होगा। सबको आश्चर्य हुआ कि क्या बात है? क्योंकि यदि कोई बात होती, तो जेल अधीक्षक स्वयं आकर चौधरी साहब से मिल लिया करता था। जेल उप-अधीक्षक श्री राणा ने, जो चौधरी साहब के लिए संदेश लेकर आया था, अलग उनकी चक्की में जाकर उनसे बात की थी। चौधरी साहब जब जाने लगे, तो हम लोगों से इतना ही कह पाये कि मैं अभी सुनकर आता हूँ कि क्या बात है? लोगों ने तरह-तरह की शंका व्यक्त की। किसी ने कहा, "चौधरी साहब छोड़े जायेंगे।" तो हमारे जैसे लोगों को यह शंका थी कि कहीं चौधरी साहब को यहाँ से कहीं दूसरी जेल में तो नहीं भेजा जा रहा है? थोड़ी ही देर में जेल अधीक्षक जेल के अन्य कर्मचारियों के साथ चौधरी साहब का सामान ले गया और हम लोगों के यह कहने पर कि हम चौधरी साहब से मिलना चाहते हैं, कहने लगा कि यदि कोई कैदी ड्योढ़ी पर रिहाई हेतु बुला लिया जाता है, तो पुनः वार्ड में नहीं आ सकता। और ऐसा ही हुआ। हम लोगों से बिना मिले ही वे तिहाड़ जेल से रिहा हो गये। बहुत उदास-सा लगा था, पर सबको एक आशा सी बँधी थी कि रिहाई की एक प्रक्रिया शुरू हो गयी। जनसंघ के लोगों ने काफी जोरों से यह अफवाह जेल के अन्दर उड़ायी कि चौधरी साहब की इन्दिरा गाँधी से कुछ लोगों के माध्यम से बात हो चुकी थी और इसीलिए उन्हें छोड़ा गया है। अफवाहों में यह भी शामिल किया था कि चौधरी साहब को लेने हेतु तत्कालीन आवास राज्यमन्त्री श्री एच० के० एल० भगत और अन्य काँग्रेसी नेता आए थे। मेरी तो इन बातों को लेकर जनसंघ के कई लोगों से झड़प भी हो गयी थी।

एकता के प्रयास, कुहासे में प्रकाश

मार्च सन् १९७६ में ही दिल्ली जेल से हम लोगों को (मुझे, के० के० गुप्ता व तीन अन्य साथियों के साथ) फतेहगढ़ (उत्तर-प्रदेश) की जेल में भेज दिया गया था। वहाँ से के० के० गुप्ता और मैं चौधरी साहब को पत्र लिखा करते थे, जिनका उत्तर भी आया करता था। तिहाड़ जेल में रहते हुए भी चौधरी साहब अपने सभी मिलने वालों को, जो भिन्न-भिन्न प्रदेशों की जेलों में रह रहे थे, बराबर पत्र लिखा करते थे।

११ जून, १९७६ को बीमार हो जाने के कारण हाई-कोर्ट के आदेश से मुझे दिल्ली जेल पुनः भेज दिया गया। यहाँ आकर मैं पण्डित गोविन्द वल्लभ पंत अस्पताल के दस नम्बर वार्ड नर्सिंग होम में दाखिल कर लिया गया था। उस समय जयप्रकाश नारायण जी एवं कुछ अन्य नेता भी जेल से बाहर आ गए थे। जयप्रकाश जी बहुत जोरों से इस प्रयास में थे कि सभी दलों को मिलाकर एक दल बना दिया जाये। इसके लिए उन्होंने बम्बई के अन्दर एक बैठक बुलाई थी, जिसमें शामिल होने हेतु चौधरी साहब भी गये हुए थे। पर वहाँ पर कुछ ऐसी घटना घटी, जिससे चौधरी साहब बहुत खिन्न होकर लौटे और उन्होंने यह तय कर लिया कि मैं इस नये दल में अपने को शामिल नहीं करूँगा। समाचार पत्रों में भी यह खबर छपी और आम जनता में यह आशंका व्यक्त होने लगी कि शायद सबको मिलाकर एक दल न बन सकेगा। समाचार पत्रों में छपने लगा कि चौधरी साहब नये दल का अध्यक्ष होने से कम की बात पर स्वयं को शामिल करने हेतु तत्पर नहीं। मुझे याद है, मैं किसी प्रकार से कृष्णकान्त जी को अस्पताल में बुलवाकर यह कहने में सफल हो गया था कि जैसे भी हो चौधरी साहब को मनाकर नये दल का गठन करना चाहिए। कृष्ण कान्त जी भी बम्बई होकर आए थे और जो बातें वहाँ हुई थीं, उनको मुझे भी उन्होंने बताया। थोड़े दिन के बाद दिलावरसिंह साँगवान, जो दिल्ली जेल में बीमार हो जाने के कारण पन्त अस्पताल में दाखिल थे, उनकी पत्नी द्वारा चौधरी साहब को संदेश भिजवाकर अस्पताल बुलाने में हम लोग सफल हो गए थे। जिस प्रकार से रायफल के साथ पहरे पर लगे हुए पुलिस के सिपाही और उनका निरीक्षण करने वाले अधिकारियों को यह कह कर कि ये दिलावर सिंह के ताऊजी हैं, हम लोगों ने चौधरी साहब से घटों बात करने में सफलता प्राप्त कर ली थी। चौधरी साहब को जनसंघ के श्रमिक नेता श्री ठेंगड़ी के पत्र से, जिसको उन्होंने जयप्रकाश जी के यहाँ देखा था और साथ ही उनके अनुसार सोशलिस्ट पार्टी के महाराष्ट्र के नेताओं के व्यवहार से काफी,

दु:ख था। भारतीय लोक दल और अपने खिलाफ जनसंघ और सोशलिस्ट पार्टी के लोगों की उस समय वे साजिश मानते थे। समय की माँग के अनुसार बहुत लम्बे वार्तालाप के बाद चौधरी साहब अगले दिन आने का वादा करके चले गये। दूसरे दिन अपने दामाद डा० जे० पी० सिंह के साथ आए और फिर एक लम्बी-वार्ता के बाद इस बात पर सहमत हुए कि जयप्रकाश जी ने २५ जून सन् १९७६ को जो बैठक बम्बई में बुलायी है, उसमें शामिल होने वे जायेंगे। चौधरी साहब बैठक में शामिल होने हेतु वहाँ गये और जब वे दिल्ली आए तो मैंने अपने एक मित्र श्री हरभगवान द्वारा यू० पी० निवास में मिलने हेतु संदेश भिजवाया। यह जानकर थोड़ा दु:ख हुआ कि चौधरी साहब उस बैठक से भी पूर्ण रूप से सन्तुष्ट होकर नहीं लौटे थे। मेरा व दिलावर सिंह सांगवान का चौधरी साहब से बार-बार यह कहना कि सारी बातों को भुलाकर जयप्रकाश जी के ऊपर भरोसा करते हुए आपको देश के हित में एक दल बना लेना चाहिए और जाते हुए वे कह गये थे कि ऐसा कोई कार्य मैं नहीं करूँगा, जिससे देश को नुकसान हो।

नये दल का गठन

मैं भी चौधरी साहब की ओर पूर्ण रूप से आश्वस्त था। तिहाड़ जेल से छूटने के बाद जब मैं फतेहगढ़ पहुँच गया था तो चौधरी साहब के बारे में नाना प्रकार की अफवाहें फैलाई जा रही थीं। इस बात को लिखते हुए मुझे जरा भी संकोच नहीं है कि उन अफवाहों को जनसघ के कार्यकर्त्ता एवं तत्कालीन जनसघ के नेता फैला रहे थे। लेकिन जब उसी समय उत्तर प्रदेश विधान-सभा का सत्र शुरू हुआ और चौधरी साहब का विधान सभा के अन्दर चार घण्टे का ऐतिहासिक भाषण हुआ, तो उसकी चर्चा सारे देश में और सारी जेलों में होने लगी थी। जो भी भ्रान्तियाँ चौधरी चरणसिंह के बारे में फैलायी जा रही थीं, वह स्वत: ही समाप्त हो गयी थीं। थोड़े दिनों बाद मोरार जी भाई व अन्य लोग जेल से रिहा हुए। अन्तत: जेल में रहते हुए हम लोगों को यह जानकर सुखद अनुभूति हुई कि जयप्रकाश जी के आशीर्वाद से एक नये दल का गठन हो गया है, जिसके अध्यक्ष मोरार जी भाई हैं। उसमें सभी दल शामिल हैं। उसका चुनाव चिह्न भारतीय लोक दल का चुनाव चिह्न हलधर होगा और उस दल का नाम जनता पार्टी रखा गया है।

जातिप्रथा के विरोधी

हमारे देश में फैली घिनौनी जाति-प्रथा के बारे में कई बार चौधरी साहब से चर्चा चला करती थी। जात-पाँत के भेद-भाव का समूल उन्मूलन करने के बारे में चौधरी साहब के व्यावहारिक विचार हैं। वे कहा करते थे कि इस देश से यह कलंक मिटाने के लिए प्रतियोगिता के आधार पर दी जाने वाली सरकारी नौकरियाँ जैसे आई० ए० एस०, पी० सी० एस०, आई० पी० एस० तथा एन० डी० ए० इत्यादि उन्हीं युवकों को दी जाये जो अन्तर्जातीय विवाह करने का प्रतिज्ञा पत्र भरें। इसी तरह इंजीनियरिंग, मेडिकल तथा दूसरी उच्च-शिक्षा पाने के लिये कालेजों में प्रवेश लेने के समय भी ऐसा ही किया जाय तो हमारे माथे से यह कलंक धुल जाएगा। चौधरी साहब का अन्तर्जातीय विवाह के सम्बन्ध में यह तर्क था कि जब यह प्रथा उच्च-वर्ग से प्रारम्भ होगी तब ही यह निम्न वर्ग में प्रचलित हो सकेगी।

उसके बाद मेरी मुलाकात चौधरी साहब से दिल्ली के विलिंग्डन अस्पताल में २२ मार्च सन् १९७७ को हुई, जब देश में आम चुनाव हो चुके थे। काँग्रेस और उसकी नेता श्रीमती इन्दिरा गाँधी हार चुकी थीं। चौधरी चरणसिंह सहित सभी नेता जीत चुके थे। मुझे भी चुनाव-परिणाम की घोषणा के बाद २१ मार्च सन् १९७७ की संध्या ८ बजे के करीब छोड़ दिया गया था। विलिंग्डन अस्पताल में चौधरी साहब का इलाज चल रहा था। आम चुनाव की गहमागहमी व गर्मी में दिन-रात परिश्रम करते हुए उनके शरीर में पानी की कमी से रोग हो गया। इसका आभास उन्हें तब चला, जब देश के अन्दर दूसरी सरकार बनने हेतु भाग-दौड़ हो रही थी।

चौधरी साहब अब देश के गृहमन्त्री हैं। ऊँच-नीच के इस भेद-भाव को मिटाने में वह कहाँ तक सफल होते हैं, यह भविष्य के गर्भ में है।

स्वतंत्र भारत के गृहमंत्री

□ लक्ष्मीकान्त शुक्ल

संसार में महान व्यक्तित्व वाले राजनयिकों का इतिहास में विशेष स्थान होता है । यही हाल व्यक्ति विशेष की भूमिका का भी है, जिसके आधार पर उसकी महानता का मूल्यांकन किया जाता है । अच्छे-बुरे व्यक्ति की परिभाषा उसकी बुद्धि, गुण एवं कर्मों से आँकी जाती है । महानता की ओर बढ़ते हुए कुछ व्यक्ति ऐसे भी देखने में आये हैं, जिन पर बुद्धि, गुण तथा कर्म तीनों में से केवल एक ही का प्रभाव होता है । ऐसे व्यक्तियों की मर्यादा सीमित होती है, जबकि तीनों गुण वाले महान व्यक्ति हर युग के इतिहास में अलग पाये जाते हैं । इन्हीं दिग्गजों के जीवन से हम व्यक्ति विशेष के चरित्र को परखते हैं ।

चौधरी चरणसिंह का भी अपना एक व्यक्तित्व है । उनके विषय को लेकर जब कुछ लिखने का प्रस्ताव मेरे सामने आया, तो श्री चरणसिंह जी से परिचित होते हुए भी मुझे उनके व्यक्तित्व की खोज करने में कुछ असुविधा अवश्य हुई—विशेषकर उनके चरित्र के मापदण्ड को लेकर । आज उनका व्यक्तित्व विशेष चर्चा का विषय क्यों हैं ? इसे समझने के लिए देश की उन परिस्थितियों पर गौर करना होगा, जिनके कारण चौधरी चरणसिंह का व्यक्तित्व उभर कर आगे आया है । देश का राजनीतिक वातावरण उनके अनुकूल था, केवल इस बात को ही आधार मान लेना उचित न होगा । उनका अपना बुद्धि-बल एवं महत्वाकांक्षाओं की सफलता के लिए संघर्ष की प्रवृत्ति का भी इसमें महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है ।

अपने चरित्र के बलबूते पर चरणसिंह जी वर्तमान व्यक्तित्व तक पहुँचे हैं, अथवा अपनी राजनीतिक सूझबूझ के कारण ? इस तथ्य की जानकारी के लिए राष्ट्रीय इतिहास के पृष्ठों को पीछे पलटना होगा । देश की आजादी के बाद से अब तक के केन्द्रीय गृहमन्त्रियों के व्यक्तित्व को समझ लेने पर इसका समाधान हो सकता है ।

संक्षेप में, सरदार वल्लभ भाई पटेल स्वतन्त्र भारत के पहिले गृहमन्त्री हुए । अपनी कार्यशैली तथा कुशल प्रशासनिक सूझ-बूझ के कारण लोग उन्हें लौह-पुरुष मानते थे । देश के विभाजन को लेकर उस समय जैसा साम्प्रदायिक तनाव और अशान्ति का वातावरण था—उन परिस्थितियों से निपटने में सरदार पटेल ने जिस धैर्य, साहस एवं प्रशासनिक दृढ़ता का परिचय दिया वह सर्वथा एक महान व्यक्तित्व की परिचायक है । उसके बाद राजे-रजवाड़ों के मसलों को उन्होंने जिस खूबी से निपटाया वह उनके लौह-पुरुष होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है । साथ ही हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि उस समय देशवासियों में केवल स्वतत्रता की लहर थी, सत्ता के महत्व का कोई ज्ञान न था । इन अनुकूल परिस्थितियों ने भी सरदार पटेल को सफलता की ओर बढ़ने में बड़ी सहायता की । ज्यों-ज्यों समय बीतता गया नेताओं में पद लोलुपता बढ़ती गयी, राजनीतिक विचारधारा की शाखाएं बिखरने लगीं, राष्ट्रीय अखंडता के टुकड़े होते दिखायी दिए; ऐसी स्थिति में सरदार पटेल ने हठधर्मी से काम लेना चाहा, उससे देश की दलगत राजनीति को उभरने का प्रोत्साहन मिला । अन्य सहयोगियों के साथ उनके मतभेदों को देखते हुए यह यहाँ कहना अनुचित न

होगा कि सरदार का व्यक्तित्व एक ऐसे लौह-धातु से बना था, जो अपनी हठधर्मी के कारण टूट सकता था, परन्तु झुकना पसन्द नहीं करता था। हठधर्मी से मेरा तात्पर्य है कि जो अपनी विचारधारा में आवश्यकता होने पर भी, लेशमात्र का परिवर्तन नापसन्द करता हो। जबकि एक कुशल राजनीतिज्ञ जनहित के लिए कहीं से भी मोड़ ले सकता है। एक हठधर्मी, कुशल प्रशासक हो सकता है, लौह-पुरुष कहला सकता है, पर कभी एक कुशल राजनयिक नहीं हो सकता है। राष्ट्र को सरदार पटेल के कार्यकाल में जो दिशा मिली वह एक लम्बे अर्से तक प्रशासकों के काम आयी।

सरदार पटेल के बाद केन्द्रीय गृहमन्त्री के पद पर श्री कैलासनाथ काटजू आसीन हुए। श्री काटजू में सिवाय इसके कि वह एक कुशल वकील थे और कोई राजनीतिक अथवा प्रशासनिक विशेषता न थी। वह व्यवहार कुशल अवश्य थे, जिसके कारण सरदार पटेल की देन का उत्तर-दायित्व बड़ी खूबी के साथ निभाते रहे। उस समय देश में राजनीतिक स्थिरता थी। राजनयिकों का हर कदम नये-नये प्रयोगों के नाम पर आगे बढ़ता था, राष्ट्रीय संविधान तथा पंचवर्षीय योजनाओं की चर्चा से ही जनसाधारण नई–नई आशाओं की तरंगों में उलझा रहता था। ऐसी स्थिति में श्री काटजू साहब को गृह मन्त्रालय के कामकाज में कोई कठिनाई नहीं हुई। नौकरशाही का तालमेल उनके बहुत काम आया और उन्होंने प्रशासन में कुछ अंश तक सरदार पटेल के स्तर को बनाये रखा। राष्ट्रहित में कुशलतापूर्वक अपने दायित्व को निभा लेना यदि प्रशसनीय कार्य है, तो उस स्थिति को किसी हद तक बनाए रखना भी कम महत्व की बात नहीं है। काटजू साहब के व्यक्तित्व की यही विशेष खूबी थी।

जब श्री काटजू मध्यप्रदेश के मुख्यमन्त्री होकर भोपाल चले गये, तो श्री नेहरू ने उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्य-मन्त्री पण्डित गोविन्द बल्लभ पंत को केन्द्रीय गृहमंत्रालय का पद-भार सौंप दिया। एक कुशल राजनीतिज्ञ, गम्भीर प्रशासक होने के साथ-साथ पंडित पंत को सरकारी काम-काज चलाने का अच्छा अनुभव था। अतएव केन्द्रीय गृह-मंत्रालय पर हावी होते उन्हें देर न लगी। नौकरशाही भी उनका लोहा मानने लगी। सरदार पटेल के मुकाबले वह न लौहपुरुष थे और न हठधर्मी, फिर भी उनकी कुशल कार्य-शैली से आज भी लोग शिक्षा ग्रहण करते हैं। उनका गम्भीर व्यक्तित्व बहुत कुछ चाणक्य-नीति से प्रेरित था– उनकी राजनीतिक सूझ-बूझ से देश को सही नेतृत्व, उनके अन्त समय तक मिलता रहा। उनके जीवन में शायद ही कभी ऐसा अवसर आया हो, जब किसी ने उनकी राय का विरोध किया हो। राजनीतिक गुत्थियों को सुलझाने में वह बड़े माहिर थे।

पन्त जी के बाद श्री लालबहादुर शास्त्री ने कुछ समय के लिये केन्द्रीय गृहमन्त्री का पद सँभाला। प्रशासन में वह बहुत कुछ पन्त जी के पदचिह्नों का अनुकरण करते रहे और इससे पहले कि शास्त्री जी अपने व्यक्तित्व का परिचय दें उन्हें कामराज योजना की लपेट में आ जाना पड़ा। वह कितने कुशल प्रशासक एवं राजनीतिज्ञ थे उसका अनुमान शास्त्री जी के प्रधान-मन्त्रित्व काल से लगाया जा सकता है। सुमधुर स्वभाव तथा गम्भीर कार्यशैली उनके व्यक्तित्व की एक बेमिसाल महानता थी।

शास्त्री जी के हटने के साथ ही केन्द्रीय सरकार के प्रशासनिक ढाँचे में बहुत कुछ कमजोरियाँ नजर आने लगीं, फलस्वरूप कामराज प्लान के अन्तर्गत श्री नेहरू ने अपने मन्त्रिमण्डल में बहुत कुछ फेर-बदल किये। केन्द्रीय गृह मन्त्रालय का भार श्री गुलजारीलाल नन्दा को सौंपा गया। वह अपनी सदाचार की कल्पना में इतने लीन रहे कि उनके व्यक्तित्व को पिछले गृह मन्त्रियों के मुकाबिले आँक सकना एक साधारण बुद्धि के परे की बात है। एक ऐसा आदर्श-वाद जिसके अमल में खुद को सशय रहे; नन्दा जी ऐसी ही राजनीतिक परिस्थितियों से सदैव उलझते रहे हैं, अन्यथा सुदामा स्वरूप नन्दा जी को, राष्ट्र की सम्पूर्ण सहानुभूति समर्पित रही है। अपने विचारों से वह महान हैं। परन्तु, अपने आदर्शवादी सिद्धान्तों को साकार करने में परिस्थितियों ने कभी भी उनका साथ नहीं दिया। फिर भी देश-सेवा की लगन उनके आदर्शवादी व्यक्तित्व की एक महत्वपूर्ण कड़ी है।

श्री नन्दा जी के बाद महाराष्ट्र से श्री यशवंतराव

चौहान को इस पद पर लाया गया। श्री चौहान को प्रशासनिक कार्यों का अच्छा अनुभव था, अतएव केन्द्रीय गृह-मन्त्रालय को अधिकारपूर्वक चलाने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। राजनीतिक शक्ति को सत्ता में संतुलित रखना चौहान साहब की अपनी विशेषता थी। नौकरशाही से अपने ढंग से काम लेने में वह सदैव सफल रहे हैं। उनके कार्य-काल में गृहमन्त्रालय में काफी स्थिरता दिखाई दी, जिसके कारण उन्हें कुशल-प्रशासक माना जाने लगा। राजनीतिक सूझबूझ में भी वह बहुत कुछ पन्त जी के समकक्ष कहे जा सकते हैं, यद्यपि कि पन्तजी के मुकाबले उनमें साहस की बहुत कमी हैं। वह सोच तो लेते हैं, पर उस पर अमल करने में झिझकते रहते हैं, इसे उनके व्यक्तित्व का एक अस्वाभाविक अंग कहा जा सकता है। राजनीतिक दृष्टि से उनके व्यक्तित्व पर कोई धारणा स्थिर करने में बहुत से मतभेद हैं।

श्रीमती गाँधी के प्रधान मन्त्री बनते ही देश की राजनीति में एक नया मोड़ आया। व्यक्तिगत महत्वाकाँक्षाओं की पूर्ति के लिए शतरजी चालें चली जाने लगीं। दलगत राजनीति का श्रीगणेश हुआ। आए दिन मन्त्रिमण्डल में मनमाने फेर–बदल होने लगे। एक ऐसा वर्ग उठ खड़ा हुआ, जो राष्ट्र की सम्पदा को अपनी मिल्कियत समझने लगा और समाजवाद का नारा लगाकर देश को गुमराह करने लगा। इसी योजना के अन्तर्गत श्री उमाशकर दीक्षित को केन्द्रीय गृहमन्त्री के पद पर नियुक्त किया गया। कहते हैं इनके कायकाल में देश की जनता पर इतनी अधिक गोलियाँ चलाई गइं, जितनी कि ब्रिटिश काल में भी नहीं चलीं थीं। वास्तव में प्रशासनिक कार्यों का इनको कोई अनुभव न था– उन दिनो गृह-मन्त्रालय का सचालन कहीं ओर से होता था। दीक्षित जी के व्यावसायिक सम्बन्धो का अधिक से अधिक लाभ उठाने के लिए इन्हें इस पद पर रखा गया था। पैसा बटोरने में यह बड़े माहिर थे। दीक्षित जी की अर्थ-व्यवस्था सम्बन्धी कार्यकुशलता के कारण राष्ट्रीय काँग्रेस का एक दल विशेष रूप से फूलता-फलता रहा। चुनावों में जी खोलकर धन बाँटा गया। करोड़ों रुपए कहाँ से आते थे और कहाँ जाते थे, इसका कोई पूछने वाला न था। भले ही दीक्षित जी ने अपने लिए कुछ न किया हो, पर उनके साथी संगी उससे अछूते रहे हों, यह कहना अनुचित नहीं जान पड़ता है।

दीक्षित जी की राजनीति पूर्णतया व्यावसायिक नीति थी। प्रधानमन्त्री की कृपादृष्टि के लिए वह कुछ भी करने को तैयार रहते थे। जब कभी भी उनकी कमजोरियों को उनके सामने लाने का प्रयत्न किया जाता तो वह हमेशा यही कहकर कि हम तो 'कमिटेड' हैं–बात को टाल जाया करते थे और यही कारण था कि गृह मंत्रालय से हटाए जाने पर भी इन्हें कर्नाटक की गवर्नरी मिल गयी। 'कमिटमेंट' की दूरदर्शिता को समझने में इनके मित्रों को काफी समय लगा। इनका अपना कभी कोई विशेष व्यक्तित्व नहीं रहा, फिर भी इन्हें अवसरवादी न कहकर भाग्यवादी कहा जा सकता है। एक कमजोर व्यक्ति जब देश का कर्णधार बन जाय तो उसे और क्या कहा जा सकता है ?

दीक्षित जी के बाद श्री ब्रह्मानन्द रेड्डी को गृहमन्त्री बनाया गया, यद्यपि इसका उद्देश्य व्यक्तिगत राजनीति था, परन्तु इसका जो परिणाम हुआ वह सबके सामने है। देश को इमरजेंसी-आपात्काल का सामना करना पड़ा और एक दिन सपेरे को साँप ने डस लिया और जनता के क्रोध ने नेवले का रूप धारण कर साँप का काम तमाम कर दिया। इस प्रकार राष्ट्रहित के नाम पर खेले जा रहे राजनीतिक अभिनय का पहला पटाक्षेप हुआ।

इमरजेन्सी के दौरान देश में क्या कुछ नहीं हुआ, उसकी कहानी बड़ी लम्बी है और इस लेख से उसका कोई विशेष सरोकार भी नही है; अतएव हम जनता सरकार के गृहमन्त्री की ओर मुड़ते हैं।

चौधरी चरणसिंह एक साधारण किसान परिवार से आए हैं; इसमें उनकी बुद्धि, गुण एवं कर्मनिष्ठा का बड़ा हाथ रहा है। विद्यार्थी-जीवन से ही वह राजनीति में शामिल हुए। स्वतन्त्रता-सग्राम में जेल-यातनायें सहीं और देश की आजादी के बाद अपनी गुण-सम्पदा के आधार पर वह प्रशासनिक कार्यों में राष्ट्रीय कर्णधारों के सहयोगी बने। उत्तर प्रदेश की सरकार में उन्हें पण्डित पन्त के साथ, उनके पार्लियामेण्टरी सेक्रेटरी की हैसियत से कार्य करने का

अवसर मिला। शनैः-शनैः वह राज्य के मुख्यमन्त्री के पद तक पहुँच गये।

श्री चरणसिंह जी पर गाँधीवाद का बहुत प्रभाव है; विशेषकर गाँधी जी के उस स्वराज्य की कल्पना का, जहाँ देश के हर गाँवों में खुशहाली हो। इसी उद्देश्य को सक्रिय रूप देने के लक्ष्य को चौधरी साहब ने अपने जीवन का मुख्य कर्त्तव्य मान लिया है। उनमें जो प्रशासनिक क्षमता पायी जाती है, उसे बहुत कुछ पन्त जी का आशीर्वाद कहा जा सकता है।

देश के वर्तमान राजनीतिक दौर में जब चौधरी साहब ने केन्द्रीय सरकार का गृह-मंत्रालय सँभाला, तो जनता ने राहत की साँस ली। लोग उनके प्रशासनिक अनुभव, राजनीतिक सूझ-बूझ एवं निर्मल-चरित्र से भली-भाँति परिचित थे।

चौधरी साहब का व्यक्तित्व एक सीमा तक सरदार पटेल के करीब पाया जाता है। लोग उन्हें लौह-पुरुष कहकर सम्बोधित करने लगे हैं। कुछ लोगों की निगाह में वह हठधर्मी भी हैं। उनकी राजनीतिक दूरदर्शिता का उनके विरोधी भी लोहा मानते हैं। इन दिनों कुछ आवाजें ऐसी भी आई हैं कि वह फिरकापरस्त हैं, उन्हें अहंकार हो गया है, जिद्दी स्वभाव है और कान के कच्चे जान पड़ते हैं। राजनीतिक जीवन में, विशेषकर जनवादी वातावरण में, लोग जो चाहे कह सकते हैं। इससे चौधरी साहब के व्यक्तित्व को क्या फर्क पड़ने वाला है, यह तो भविष्य ही बताएगा। देश को उनसे बड़ी-बड़ी आशायें हैं, वह राष्ट्र की सम्पदा हैं। अतः चौधरी साहब को अपने आचरण से सतर्क रहने की आवश्यकता है। सत्ता के मद से सावधान रहना होगा और अपने हठधर्मी के स्वभाव को सीमित करना होगा।

"कबिरा गर्व न कीजिए रंकु न हँसिए कोय,
अबहूँ नाव समुद्र में, कब जाने का होय॥"

●

जो अत्याचारित हैं, जो बन्धन-ग्रस्त हैं, जो विपत्ति में छटपटा रहे हैं, जो हजारों कष्टों में पड़े हुए हैं, जो विचित्र-भय और दारुण शोक को प्राप्त हैं—वे सब मुक्त हों, वह लोग बंधन से छूटें, अत्याचारी लोगों का अत्याचार दूर हो, जिनका वध हो रहा है, वे जीवन पायें—सबका परम् कल्याण हो। भूखों को अन्न मिले, प्यासों को पानी मिले, नंगों को वस्त्र मिले, अन्धों को आँख मिले, बहिरों को कान मिलें, धनहीनों को धन मिले, किसी को दुःख न हो, सब सुखी हों, किसी का मन पाप कर्म की ओर न जावे, सब पुण्य की ओर झुकें—सबका परम् कल्याण हो।

—बोधिसत्व

●

उन्हें कुछ करने दो

□ विद्या भास्कर
संपादक 'आज'

चौधरी चरणसिंह जैसे सुदृढ़ और साफ मन वाले नेता आजकल कम देखे जाते हैं। गाँधीवादी परम्परा के पक्के अनुयायी होने के नाते आप अपने मन की बात को निर्भीकतापूर्वक कहने के अभ्यस्त हो गये हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'एकला चलो रे' की पुकार उनके जीवन का पथ-प्रदर्शक अंग बन गयी है। मतभेद रखने वालों, प्रतिरोधियों, प्रतिस्पर्द्धियों और विरोधियों तक की संख्या और बल चाहे जितना अधिक क्यों न हो, चौधरी चरणसिंह उनमें से किसी की भी परवाह किये बिना अपनी बात पर डटे रहने वाले बिरले व्यक्तियों में हैं।

सरदार पटेल और डाक्टर सम्पूर्णानन्द जी दोनों सुदृढ़ मनस्वी माने जाते थे और प्रशासन के कार्यों में स्पष्ट वादिता तथा मनोबल को अपना संरक्षक तथा शस्त्र भी मानते थे। श्री चरणसिंह उसी कोटि के नेता हैं। किन्तु उन दोनों की अपेक्षा आपमें समयानुकूल समझौता कर लेने की प्रवृत्ति की भारी कमी है। सरदार पटेल कहा करते थे कि जवाहरलाल नेहरू का आगे-आगे रहना देश के हित की बात है। डाक्टर सम्पूर्णानन्द जो, यद्यपि यह पसन्द नहीं करते थे कि राष्ट्र हितकारी प्रशासनिक कार्यों में प्रधानमन्त्री जवाहर लाल नेहरू दखल दें, तथापि नेहरू जी के मनोभावों का आदर करते हुए राजनीतिक स्तर पर उनके (नेहरू जी के) अनुशासन को वे सहर्ष स्वीकार करते थे।

चौधरी चरणसिंह इस प्रकार के समझौतों को भी पसन्द नहीं करते। आपके बारे में यह बात कही जाती है कि आज तक आपकी किसी से पटी नहीं। उत्तरप्रदेश के प्रथम मुख्य मन्त्री पण्डित गोन्विद बल्लभ पन्त, वरिष्ठ नेता और लम्बे समय तक के मन्त्री हाफिज मुहम्मद इब्राहीम, डाक्टर सम्पूर्णानन्द और श्री चन्द्रभानु गुप्त में से हर एक चौधरी साहब के विचारों की नेकनीयती का कायल था, लेकिन आपके आग्रह को तोड़ नहीं पाता था। चौधरी साहब यह कहते जान पड़ते हैं कि जिस बात को मैं राष्ट्र-हितकारी मानता हूँ, उसके प्रति आग्रह करने में मैं संकोच क्यों करूँ, किसी से भयभीत क्यों होऊँ और किसी से समझौता क्यों करूँ ?

इस स्थान पर गाँधीवादी चरणसिंह स्वयं गाँधी जी से दो कदम आगे हैं। गाँधीवादी सत्याग्रह और अहिंसात्मक आन्दोलन दोनों की यह मान्यता है कि पग-पग पर प्रतिपक्षी से समझौता करते हुए आगे बढ़ते रहना श्रेयस्कर है। सन् १९३१ में लार्ड इर्विन से समझौता करते समय जब गाँधी जी की आलोचना की गयी थी, तब उन्होंने कहा था कि हिंसावादियों और अहिंसावादियों में यही अन्तर है। हिंसावादी शत्रु का सफाया करके दम लेना पसन्द करता है और अहिंसावादी उससे न्याय-मार्ग कबूल कराने के बाद भी उसे जीवित रहने की आजादी और हक देता है। चौधरी साहब को अपनी आग्रही प्रवृति के कारण बहुत कष्ट झेलने पड़े हैं, बदनामी का 'सेहरा' ओढ़ना पड़ा है, लेकिन आप अविरल भाव से आगे बढ़ते ही जाते हैं। आपको यदा-कदा समझौता करना पड़ा है, किन्तु वह स्थायी नहीं रह पाया है।

आज भारत के राजनीतिक क्षेत्र में जो दस-पाँच

किसान नेता हैं, उनमें चौधरी चरणसिंह जी अग्रणी हैं। आप किसानों की भीड़ इकट्ठा कर पुराने जमींदारों और प्रशासकों से मुठभेड़ करने वाले किसान नेता नहीं हैं। श्रमिक आन्दोलन या इस तरह के किसान आन्दोलन पर आपका विश्वास कम रहा है। इसका कारण शायद यह है कि आपका विश्वास ठोस काम पर ज्यादा रहा है।

श्री चरण सिंह अध्ययनशील तथा चिन्तनकर्ता किसान नेता हैं। भारत के किसानों की समस्याओं पर आपने जितना अध्ययन-मनन किया है, उतना शायद ही किसी नेता ने किया हो। आपकी इन समस्याओं पर लिखी पुस्तकें अतुलनीय हैं। भारत के स्वराष्ट्र मन्त्री के रूप में आप जो देश सेवा कर रहे हैं, उसका आज की परिस्थितियों में विशेष महत्व है। किन्तु यदि चौधरी साहब के हाथों कृषि मन्त्रालय होता और स्वतन्त्र विवेक से देश की कृषि की उन्नति का काम आपको करने दिया जाता, तो दस-पाँच वर्ष में ही हमारा देश कृषि की ऐसी क्रान्ति कर देता, जिससे भविष्य में हम अन्न-कष्ट भोगने के लिए कभी बाध्य न होते—चाहे देश की आबादी कितनी ही क्यों न बढ़ जाती।

श्री चरण सिंह जैसा मित्र पा लेना किसी के लिए भी बड़े भाग्य की बात है। मैं उनके निकट थोड़े समय रहा हूँ। उत्तर प्रदेश सरकार ने सन् १९४८ में समाचार-पत्र-उद्योग जाँच समिति बनायी थी। चौधरी साहब उसके अध्यक्ष थे; मैं मन्त्री (आजकल की भाषा में सचिव) था। उनके साथ काम करने में मुझे वास्तव में आनन्द ही मिलता था। औपचारिक और केवल जाब्ते का सौजन्य प्रकट करना चौधरी साहब को बिलकुल पसन्द नहीं है, किन्तु उन्होंने अपने जाँच समिति के सचिव की सलाह और सुझाव पर सदस्यों के के प्रति सदा औपचारिक सम्बन्ध बनाये रखकर बड़े आदर्श का परिचय दिया था। समिति की समाप्ति के बाद मैं जब कभी किसी सार्वजनिक हित-साधक कार्य के लिए आपके पास गया हूँ, आपने मेरी मदद की है। सरकारी अफसरों की रजामन्दी का सफल विरोध करते हुए उन्होंने सार्वजनिक हित का संरक्षण किया है। प्रयाग स्थित उत्तर प्रदेश हिन्दुस्तानी एकेडमी के प्रधान सचिव की हैसियत से जब मैंने उनसे यह आग्रह किया कि प्रयाग के आजाद पार्क की एक टुकड़ा जमीन एकेडमी का भवन बनाने के लिए चाहिए किन्तु कोई पुराना नियम और कुछ दकियानूसी अफसर बाधक हो रहे हैं, तब चौधरी चरण सिंह ने मेरी बातें सुन ली थीं, तुरन्त कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया था। दस दिन के अन्दर हमें उत्तर-प्रदेश-शासन के आदेश की नकल मिल गयी कि शासन ने उत्तर प्रदेश हिन्दुस्तानी एकेडमी को उसकी माँग के अनुसार आजाद पार्क में से एक एकड़ जमीन दिये जाने का आदेश दे दिया है।

पंचायती राज्य में हर पंच अकेले अपनी अक्ल को बड़ी मानता है। क्या ही अच्छा होता कि आज के केन्द्रीय पंचायती राज्य में चौधरी चरणसिंह को कुछ देश-हितकारी काम कठोरता और निर्भयता से करने दिया जाता। चौधरी चरणसिंह ही देश का भला कर पायेंगे, उनसे किसी सत्पुरुष के भयभीत होने का कोई कारण नहीं है।

●

रात्रौ यथा मेघघनान्धकारे विद्युत् क्षणं दर्शयति प्राभास्याः।
बुद्धानुभावेन तथा कदाचित् लोकस्य पुण्येषु मतिःक्षणं स्यात्॥

जिस प्रकार मेघाच्छन्न घोर-अन्धकारपूर्ण रात्रि में विद्युत् क्षण भर के लिये प्रकाश विकीर्ण कर जाती है, उसी प्रकार कभी-कभी बुद्धि की कृपा से मनुष्य को प्रकाश मिल जाता है और सच्चा रास्ता दिख जाता है।

—शान्तिदेव

चरितार्थ आदर्श

□ चन्द्रशेखर पण्डित
विशेष संवाददाता, 'अमृत बाजार पत्रिका'

शायद यह पुरानी कहावत है कि नेता कोई बनता नहीं; समय और देश की जरूरत के साथ नेता उभरता है। वैसे तो आमतौर पर लोग हर समय कोशिश में रहते हैं कि जिस स्तर पर काम कर रहे हों, उसके उच्चतम स्थान पर किसी न किसी तरह पहुँचे। पर हर कोई तो ऊपर नहीं पहुँच सकता। ऊपर पहुँचने वाला तो एक ही होता है, जो समय आने पर उभरता है। जब मैं पहले-पहल चौधरी चरणसिंह से सन् १९६१ में मिला था, तो कभी यह नहीं लगता था कि यह सौम्य मूर्ति एक दिन भारत का नेता बनकर इस देश के गरीबों के आँसू पोछने का प्रयास करेगा। तब श्री चरणसिंह उत्तर प्रदेश सरकार में एक वरिष्ठ मन्त्री थे। मुख्यमन्त्री थे, श्री चन्द्रभानु गुप्त। वह समय था, जब काँग्रेस में, खासकर उत्तर प्रदेश में, दलबन्दी अपने बड़े उग्ररूप में थी। श्री कमलापति त्रिपाठी, श्री गुप्त के विपक्षी दल के नेता थे। कहना न होगा कि श्री चरणसिंह की भी, श्री गुप्त से पटरी ठीक से बैठती नहीं थी, फिर भी वह कभी विपक्ष दल में शामिल नहीं हुए। हाँ इतना जरूर था कि विपक्षी दल अपनी हर चाल में चौधरी साहब से सलाह जरूर लेता रहा।

उन्हीं दिनों मैं 'स्टेट्समैन' समाचार पत्र का प्रतिनिधि होकर लखनऊ गया था। जिस दिन पहले-पहले मैं चौधरी साहब से मिलने उनके बँगले पर गया, तो उस दिन बिल्कुल ख्याल नहीं था कि मैं उस हस्ती से मिल रहा हूँ, जो एक दिन भारत की राजनीति में तहलका मचा देगी। सुन रखा था कि चौधरी साहब का सम्मान देश के गाँवों और गरीब किसानों की तरफ अधिक है। यह भी जानता था कि नागपुर काँग्रेस-सम्मेलन में इन्होंने नेहरू का कोआपरेटिव फार्मिङ्ग के प्रस्ताव का कसकर विरोध किया था। यह विरोध इसलिए था कि चौधरी साहब जानते थे कि किसान कितना ही छोटा क्यों न हो, अपने खेत को अपनी माँ के समान ही प्यार करता है और उसे यह कभी भी स्वीकार न होगा कि वह खेत, उसका अपना निजी न रहकर कोआपरेटिव का हो जाये, जिसमें वह सिर्फ एक हिस्सेदार से अधिक कुछ न हो। नेहरू जी को चौधरी साहब का वह विरोध काफी खला था। उसके पहले भी उनके बीच काँग्रेस की नीतियों को लेकर काफी अनबन पैदा हो चुकी थी। नेहरू और उनके अनुयायियों ने तभी से श्री चरणसिंह पर प्रगतिशील न होने का आरोप लगा दिया। यह वही समय था, जब मैं चौधरी साहब से पहले-पहल मिला। एक लम्बे कद का सौम्य पुरुष, जिसे अगर कोई जानता न हो, तो देश के किसी गाँव का सरपंच मान लेता, अपने कमरे में विराजमान कुछ लोगों से धीरे-धीरे कुछ कह रहा था। मैं पहुँचा और परिचय दिया, तो बड़े प्यार से पास पड़ी कुर्सी पर बैठने को कहा। उन्हीं दिनों शायद उनकी वह किताब, जिसमें उन्होंने कोआपरेटिव फार्मिङ्ग की कड़ी समीक्षा और भर्त्सना की थी, प्रकाशित हुई थी। उत्तर प्रदेश की उन दिनों की राजनीति में चौधरी साहब का एक विशेष स्थान था, क्योंकि वे जिस दल का साथ देते वही सत्तासीन रहता। उस समय वह श्री गुप्त के साथ थे और उनकी सरकार में मन्त्री भी, पर कुछ दिनों से दोनों में कुछ अनबन थी और कहा जाता था कि चौधरी साहब भी श्री कमलापति के दल में मिल जायेंगे। यह बात कितनी गलत थी, इसका पता मुझे उसी समय चल गया,

जब मैं उनसे मिला। यह वह हस्ती थी, जो किसी और को नेता स्वीकार नहीं कर सकती थी।

हमारी बातचीत के दौरान चौधरी साहब ने स्वयं स्वीकार किया कि अगर उन्होंने किसी हस्ती को अपना नेता कभी माना है, तो वह थे सरदार पटेल। नेहरू जी से तो इन्हें हमेशा से यह शिकायत रही कि वह शायद भारत को, इसके गाँवों को, इसके सही गरीब–किसानों को समझते ही नहीं थे। उनके दिमाग में पाश्चात्य-विचारों का बहुत प्रभाव था और इसीलिये उनकी नीतियों का आधार–स्तम्भ पाश्चात्य ढंग का औद्योगीकरण था, जिससे न तो गाँव की हालत ही सुधर पाती और न लोगों को काम ही मिल पाता। लेकिन उत्तर प्रदेश में जमींदारी–उन्मूलन के बाद चौधरी साहब का बड़ा बोलबाला था। जो विधेयक उन्होंने उत्तर प्रदेश विधानसभा में पास करवाया था, उतना प्रगतिशील तो केरल की कम्युनिस्ट सरकार का भी नहीं रहा। इस कारण यह कहना कि चौधरी साहब बड़े किसानों के नेता थे, कोई इसे मानने को तैयार नहीं था।

जैसे–जैसे काँग्रेस में दलबन्दी बढ़ती गयी वैसे–वैसे चौधरी साहब का दिल इस संस्था से, जिसमें उन्होंने काफी साल गुजारे थे, खिन्न होने लगा। उस खिन्नता का अनुमान सन् १९६१ में ही लगने लगा था। चौधरी साहब फिर भी छः साल तक क्यों काँग्रेस में बने रहे, इसका कारण शायद सिर्फ यही था कि जिस संस्था में वह बने थे, उसे एकदम छोड़ने में उन्हें हिचकिचाहट होती होगी। पर श्री नेहरू के बाद काँग्रेस में जो भ्रष्टाचार फैला, उससे खिन्न होकर अन्त में चौधरी साहब को इस संस्था से मुँह मोड़ना ही पड़ा। लेकिन एक दफा आगे बढ़ जाने पर उन्होंने फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा। उन्हें सबसे बड़ी ठेस तब लगी, जब श्रीमती इन्दिरा गाँधी प्रधानमन्त्री होते हुए अपने वादों से पीछे हट गयीं।

काँग्रेस से अलग होकर जब चौधरी साहब ने भारतीय क्रान्ति दल की स्थापना की, तब उनके विपक्षी काँग्रेसियों ने उन्हें सिर्फ पश्चिम उत्तर प्रदेश का जाट नेता कहकर बदनाम करना शुरू किया। लेकिन सन् १९६९ के चुनावों में जब वह ९९ सदस्य विधानसभा में सारे प्रदेश से चुनवा लाये, तो यह सब थोथे आरोप आप ही खत्म हो गये। इसके बाद तो चौधरी साहब का राष्ट्रीय–स्तर पर आविर्भाव होना अनिवार्य ही हो गया। अगर श्री जयप्रकाश नारायण के साथ-साथ एक नेता को जनता पार्टी बनाने का श्रेय है, तो वह है श्री चरणसिंह को। साथ ही साथ इसमें भी उनकी महानता रही कि श्री मोरार जी देसाई को, जो उम्र में और देश की राजनीति में भी उनसे बड़े हैं, अपना नेता मानने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं की।

आज चौधरी चरणसिंह देश के सशक्त गृहमन्त्री हैं। उनके सामने हर समय सरदार पटेल का उदाहरण रहता है। किसी भी किस्म का भ्रष्टाचार वह नहीं देख सकते और उनका सबसे बड़ा प्रण है, देश की राजनीति से भ्रष्टाचार को खत्म करना। दूसरा उद्देश्य उनके सामने है देश के गरीब गाँवों और उनमें बसने वाली पीड़ित जनता को आर्थिक उन्नति की ओर बढ़ाना। अगर यह दो काम वह कर पाये, तो उनका जीवन, जो सदा कश्मकश से भरा रहा है, उनकी आँखों में सफल होगा। उन्हें यह चाह नहीं है कि वह देश के सबसे बड़े नेता गिने जायें। अगर वह अपने उद्देश्यों को कार्यान्वित न कर पाये, तो ऐसी नेतागीरी से उन्हें कोई सरोकार नहीं।

क्योंकि चौधरी चरणसिंह स्वयं बहुत सदाचारी रहे हैं, उनके सत्ता में बने रहने से बहुत से लोग घबराते हैं। कई लोग, जो उन्हें सिर्फ इसीलिये नहीं चाहते कि उनका व्यापार जो राजनीतिक भ्रष्टाचार पर निहित था, अब नहीं चल सकता। ऐसे ही लोग चौधरी साहब के बारे में भाँति-भाँति की अफवाहें उड़ाया करते हैं, पर इन अफवाहों के पीछे कोई सत्यता नहीं दीखती। एक समय था, जब चौधरी साहब को उत्तर प्रदेश काँग्रेस सरकार से इस्तीफा देना पड़ा था और कोई अन्य आमदनी का साधन न होने के कारण उन्हें काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। ऐसे व्यक्ति में अधिकतर थोड़ा-सा अपना अहं अवश्य रहता है, पर वह किसी भी परिस्थिति में अपने आपको नीचे नहीं गिरने देता। अभी देश को चौधरी चरणसिंह से बहुत आशायें हैं।

राष्ट्रीय भावना और भाषा

□ श्रीमती कमला रत्नम्

राष्ट्र की एक परिभाषा राष्ट्रपति सुकर्ण ने गुलामी के पंजे हट जाने के बाद बतायी थी। इन्दोनीसिया के स्वतन्त्रता आन्दोलन के आरम्भ में ही उन्होंने 'एक भूमि, एक पताका, एक भाषा' का नारा दिया था। इतिहास का निर्णय चाहे कुछ भी हो, राष्ट्रपति सुकर्ण से उनका यह यश छीना नहीं जा सकता कि उन्होंने ६००० छोटे-छोटे द्वीपों को मिलाकर एक बड़ी भूमि बनायी, जिसे आज इन्दोनीसिया गणतन्त्र की भूमि कहते हैं। दक्षिण-पूर्व एशिया में आज सबसे विशाल, सबसे सशक्त और प्रगतिशील यही भूमि है। भौगोलिक सीमाओं को एक सुगठित-स्वशासित रूप देने के लिये उन्होंने इस भूमि को एक केन्द्रीय-शासन प्रदान करके उसके प्रतीक स्वरूप एक पताका भी प्रदान की। परन्तु भौगोलिक और राजनीतिक एकता किसी देश को ऊपर से अथवा बाहर से ही जोड़ सकती है। देश के समस्त निवासियों को आपस में घुल-मिल कर एक हो जाने के लिये समान भाषा की बहुत आवश्यकता होती है। इसी कारण राष्ट्रपति सुकर्ण ने अपने देश में अनेक स्थानीय भाषाओं के होते हुए भी आजादी के आन्दोलन के लिये बहु प्रचलित 'भासा इन्दोनीसिया' का ही प्रयोग किया। वर्तमान में यही भाषा समस्त इन्दोनीसिया की राष्ट्रभाषा व राजभाषा है। एक बार निर्णय ले लिये जाने और उस निर्णय को कड़ाई से लागू करने के बाद कठिनायी नहीं रहती, समस्या वहीं हल हो जाती है। रूस और इज-रायल में ऐसा किया जा चुका है। हम जानते हैं कि सन् १९४७ से पहले हमारे पड़ोसी सभी दक्षिण-पूर्व एशियाई देश साम्राज्यवाद के चंगुल में थे। साम्राज्यवाद के हट जाने के बाद जब यह देश स्वतन्त्र हुए, तो उन्होंने अंगरेजी, डच या फ्रेंच को छोड़कर अपनी-अपनी भाषा अपना ली। बर्मा, इन्दोनीसिया, मलयेसिया, थाईलैण्ड, लाओस, वियेतनाम, फिलिपीन यहाँ तक कि श्रीलका भी आज अपना राजकीय कार्य देशी भाषाओं में करते हैं। स्कूलों और विश्वविद्यालयों में शिक्षा देशी भाषाओं में होती है, न्यायालयों में बहस और निर्णय जनभाषा में होते हैं।

विवाद और आश्चर्य का विषय है कि भीतरी आजादी की इस लहर से भारत एकदम वंचित रह गया। चारो ओर पड़ोसी देशों में जब लोगों की खुशी और उत्साह देशी भाषाओं में उमड़ रहा था, तब भारत अकेला अंगरेजी के उजड़े द्वीप पर खड़ा मन ही मन कुछ सोच रहा था। उसके पास अपनी वाणी नहीं थी, जिसकी गूँज या अनुगूँज से वह आकाश को भर देता। एक समय वह था जब कई सहस्त्र वर्ष पहले भारत ने अपने इन पड़ोसियों को अपनी वाणी सजाने-सँवारने में मदद दी थी, अपने विद्वानों, पण्डितों, वैय्याकरणों को इन देशों में ज्ञान का भण्डार लेकर भेजा था। वही भारत आज इन पड़ोसियों से आतंकवादी भाषा में बोलने के लिये मजबूर था, इसलिए, क्योंकि वह अपनी बोली भूल गया था, या उसने अपनी भाषा सीखी नहीं थी। चौधरी चरण सिंह ने ठीक ही कहा था कि आजादी के बाद भारत की भाग्य-नौका को दिशा देने का काम जिस नाविक के पास था, दुर्भाग्यवश उसके पास भारतीय मस्तिष्क और मानसिकता नहीं थी। बारह वर्ष की छोटी आयु से जो पूर्ण युवावस्था हो जाने तक इग्लैण्ड में पढ़े, रहे, घूमे, किसी भी भारतीय भाषा की शिक्षा जिसे न दी जाये, उसका मनन

और चिन्तन कैसे भारतीय हो सकता है ? यह सर्व-विदित है कि भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री को गरीब और ग्रामवासी भारतीय पोशाक से चिढ़ थी। उसकी बोली को वह गँवार और अक्षम समझता था। फलस्वरूप भारत की भाषायी अक्षमता आज उसकी सामूहिक प्रगति में, उसकी समग्र जन-शक्ति के आगे बढ़ने में दानवीय आकार लेकर बाधक हो गयी है, जो उसे एक मन से सोचने और काम करने नहीं देती। इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का एक और उदाहरण अभी सामने आया है। अभी तक तो राजनीतिज्ञ ही अपने निहित स्वार्थों के कारण हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में विरोध करते थे, परन्तु पिछले दो वर्षों से यह प्रवृत्ति देश के बौद्धिक वर्ग में भी व्याप्त हो रही है। सन् १९६२ में राष्ट्रीय ज्ञान पीठ पुरस्कार की स्थापना की गयी, इस उद्देश्य से कि विभिन्न भारतीय भाषाओं के उत्कृष्ट साहित्य को एक मंच पर लाया जाये और जीवित लेखकों की श्रेष्ठ कृतियों को पर्याप्त बड़ी धनराशि देकर पुरस्कृत किया जाये। सन् १९-६५ का प्रथम पुरस्कार मलयालम के वरिष्ठ कवि श्री जी० शंकर कुरुप को मिला। मुझे आज भी वह दिन याद है, जब विज्ञान-भवन में राजा भोज द्वारा स्थापित सरस्वती प्रतिमा की प्रस्तरमयी प्रतिकृति और एक लाख रुपये का पुरस्कार प्राप्त कर कवि श्री ने श्रोताओं को सुमधुर मलयालम में काव्यमय गद्य में सम्बोधित किया था। परिचय-पुस्तक में कवि के भाषण का मूल पाठ देव नागरी लिपि में हिन्दी अनुवाद सहित मुद्रित था; अगरेजी में समानान्तर अनुवाद की भी व्यवस्था थी। यह था एक उत्सव सरस्वती देवी का जिसमें भारत के विभिन्न प्रदेशों को एक सूत्र में पिरोने का काम पूरी सच्चाई और ईमानदारी से किया गया था। परन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया, पुरस्कृत कवि और लेखक अपने महान उद्देश्य को भूलने लगे और हिन्दी के स्थान पर फिर अंगरेजी की अपनी पुरानी आदत पर उतर आये। सन् १९-७६ में पुरस्कृत तमिल लेखक अखिलन ने अपना वक्तव्य अंगरेजी में ही तैयार किया, अंगरेजी में ही पढ़ा और एक ऐसा अवसर खो दिया, जब उनकी बात उनकी मूल तमिल में लोग सुन सकते और उसे नागरी लिपि में छपा देखकर थोड़ा बहुत समझ सकते थे। कविवर कुरूप की भाषा मलयालम होने के कारण उनके व्यक्तव्य में बहुत सा अंश लिपि के परदे के बाहर आकर संस्कृत शब्दावली के माध्यम से चमकने लगा था और बोधगम्य हो गया था। तमिल को छोड़ कर यही बात अन्य सब भारतीय भाषाओं पर लागू है। लिपि के पर्दे से बाहर आकर, अंगरेजी की राहुछाया से हट कर, अगर यह भाषायें देवनागरी लिपि में हमारे सामने आयें, तो हम उनका बहुत बड़ा अंश समझ सकते हैं और इस प्रकार एक दूसरे के निकट आ सकते हैं। ज्ञानपीठ पुरस्कार का एक प्रमुख उद्देश्य इसी भीतरी एकता, आन्तरिक राष्ट्रीयता को पुष्ट करना था। जब कि उसका दूसरा उद्देश्य भारतीय लेखकों में आत्म-सम्मान की भावना जगाना और उनका विदेशी पुरस्कारों की ओर ललचाई दृष्टि से देखते रहना बन्द करना था। कुछ हद तक भारतीय लेखक अब नोबुल पुरस्कार के लिये उतने लालायित नहीं हैं, न ही उसके लिए जोड़-तोड़ कर रहे हैं। परन्तु ज्ञानपीठ पुरस्कार का प्रथम और मुख्य उद्देश्य कुछ-कुछ धूमिल पड़ता दिखाई दे रहा है। सन् १९७७ वर्ष का ज्ञानपीठ पुरस्कार सुप्रसिद्ध बँगला लेखिका आशापूर्णा देवी को दिया गया है। भारत के लिए किसी एक राष्ट्रभाषा की आवश्यकता के सम्बन्ध में जब उनसे प्रश्न किया गया था, तो उन्होंने बन्देमातरम् की पंक्तियों और अपने मातृ-हृदय को ताक पर रखते हुए दो टूक उत्तर दिया– 'भारत की सभी भाषायें पर्याप्त विकसित हैं। इसलिए किसी एक भाषा को राष्ट्रभाषा का पद नहीं देना चाहिये"। जब भारत के प्रबुद्ध और शिक्षित बुद्धिजीवी इस प्रकार की बातें करेंगे तब राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय समानता की भावना किस प्रकार पनप सकती है ? हिन्दी और बंगला अपने उच्चारण भेद के बावजूद एक दूसरे के इतना निकट हैं कि उसके शिक्षित जानने वालों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे एक दूसरे को न समझ सकें। आशा पूर्णादेवी को राष्ट्रीयता की परिभाषा में भाषा की भूमिका को समझना ही चाहिए था, विशेषकर जब उनके पड़ोसी बाँगला देश ने कुछ ही वर्ष पूर्व भाषायी आधार पर पाकिस्तान से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया और उसके लिए एक बहुत बड़ी कीमत चुकाई। मैं समझती हूँ कि हिन्दी को राष्ट्र भाषा स्वीकार करना सर्व प्रथम इस देश के कवियों और बुद्धिजीवियों का काम है। कवि और लेखक अध्यापक और शिक्षक देश के एक बड़े प्रभावी अंग को प्रभावित करते हैं। भाषा के सम्बन्ध में यदि उन सबकी राय एक हो जाये, तो राष्ट्रभाषा का कार्य बड़ी आसानी और तेजी से आगे बढ़ सकता है।

अँगरेजी का बराबर बने रहना भी राष्ट्रीय-एकता,

भाषायी भाई-चारे के लिए एक बहुत बड़ा खतरा है। यह सर्व विदित है कि हिन्दी भाषी राजधानी में १७ वर्ष रहने के बाद भी डा० राधाकृष्णन् ने हिन्दी नहीं सीखी। संसद के सम्मिलित अधिवेशनों में उन्होंने साल दर साल कड़े विरोध और प्रदर्शनों के बावजूद अपना भाषण अंगरेजी में ही जारी रखा। संसद के सभी सदस्य अंगरेजी नहीं जानते थे। कम से कम ५० प्रतिशत सदस्यों को इस दास-भाषा का काम-चलाऊ ज्ञान भी नहीं है। राष्ट्रपति यदि हिन्दी के अतिरिक्त किसी अन्य भारतीय भाषा में अपना अभिभाषण देते, तो उस प्रदेश के सब सदस्य तो उसे समझते ही, अन्य व्यक्तियों को भी पूरे देश के प्रतिनिधि भवन में एक दूसरी सक्षम भाषा को सुनने का मौका मिलता और सभी भारतीय भाषाओं के समान रूप से सक्षम होने का दावा साकार हो जाता। अन्यथा इस तर्क में क्या जान है कि भारत की सभी भाषायें समान रूप से विकसित और सक्षम हैं, जब अखिल भारतीय स्तर पर और विशेषकर केन्द्र में हिन्दी को छोड़ कर उनमें से किसी का भी उपयोग नहीं होता। जहाँ बँगला, तेलगू या कन्नड़ बोलने का सवाल आया कि सबके सब दौड़कर अंगरेजी की शरण में पहुंच जाते हैं। कितनी दयनीय स्थिति है कि वे यह नहीं सोच पाते कि आवश्यकता और अवसर होने पर भी अपनी भाषा का प्रयोग न कर वे राष्ट्र का और स्वयं अपनी प्रादेशिक भाषा का कितना बड़ा अहित कर रहे हैं। उन्हें जानना चाहिए कि हिन्दी को रोककर वे अन्य भारतीय भाषाओं का गला तो घोट ही रहे हैं, परन्तु पूरे देश को अंगरेजी की निरन्तर गुलामी की ओर बरबस धकेल रहे हैं। मेरा सुझाव है कि संसद भवन में समानान्तर कई भाषाओं के अनुवाद की व्यवस्था हो सकती है और प्रत्येक सदस्य के लिये अनिवार्य हो सकती है कि यदि वह हिन्दी में नहीं बोल सकता, तो अपनी क्षेत्रीय भाषा में बोले। ऐसी व्यवस्था हो जाने पर सुविधा और सहूलियत की दृष्टि से एक ही भाषा छनकर ऊपर आ जायेगी और सब उसी का सहारा लेंगे। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वह सार्व-देशिक भाषा हिन्दी ही होगी। हिन्दी आपस में सम्पर्क की भाषा होगी, वह लोगों के हृदय की भाषा होगी, उनके आत्म-सम्मान की भाषा होगी, उनकी भारतीयता की भाषा होगी। प्रधानमन्त्री और जनता सरकार के कई आचरण हमें इस दिशा में आश्वस्त करते हैं। इनमें विदेश मन्त्री श्री अटलबिहारी बाजपेई का राष्ट्र-संघ के सम्मुख हिन्दी में अभिभाषण प्रमुख है।

राजनीति के कारण हिन्दी और उर्दू का झगड़ा भी अक्सर खड़ा कर दिया जाता है। जब कभी भी मुसलमानों के वोटों की आवश्यकता पड़ी कि राजनीति-मंच से 'उर्दू खतरे में' की आवाज उठती है। सच तो यह है कि अगर उर्दू का राजनीतिक मोहरे के रूप में इस्तेमाल न किया गया होता और आगे भी न किया जाये, तो उर्दू और हिन्दी में कोई भेद नहीं है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, एक ही साहित्य की दो शैलियाँ हैं और दोनों को एक दूसरे की जरूरत है। जिस प्रकार गंगा और यमुना का संगम उन दोनों नदियों के अलग-अलग जल से अधिक पवित्र और स्पृहणीय है, उसी प्रकार हिन्दी और उर्दू की मिली हुई भाषा अधिक व्यापक रूप से हृदयों को छूती और उद्वेलित करती है। अमरोहा में जन्मे और अब पाकिस्तान में निवास करने वाले प्रसिद्ध कवि 'जोन इलिया' की ये पंक्तियाँ दर्शनीय हैं—

मत पूछो कितना गमगीं हूँ गंगा जी और जमुना जी।
क्या मैं तुमको याद नहीं हूँ गंगा जी और जमुना जी॥
अपने किनारों से कह दीजो आँसू तुमको रोते हैं।
अब मैं अपना सोग नशी हूँ गंगा जी और जमुना जी॥
मै जो बगुला बनकर बिखरा वक्त की पागल आँधी में।
क्या मैं तुम्हारी लहर नहीं हूँ गंगा जी और जमुना जी॥
बान नदी के पास अमरोहे में जो लड़का रहता था।
अब वो कहाँ है? मैं तो वही हूँ गंगा जी और जमुना जी॥

पाकिस्तान से दो युद्धों के बाद भी अपनी जमीन, अपने खून के लिए कितनी कसक है इन पंक्तियों में। उर्दू के नाम पर पाकिस्तान का बँटवारा हुआ। उर्दू पाकिस्तान की राजभाषा घोषित हुई, परन्तु १५ वर्ष के भीतर ही बँगला भाषा ने इस मनमानी को नहीं माना। पंजाबी और सिन्धी लोगों ने भी विरोध का स्वर उठाया और आज अगर पाकिस्तान में तानाशाही न हो और लोगों के दिलों से पूछा जाये, तो क्या बंगाली, क्या पंजाबी और क्या सिन्धी सब अपने समभाषियों के गले लगने को तैयार हैं। फिर चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान। उर्दू के हिन्दी में समोये हुए इस मिलेजुले रूप को हिन्दी प्रदेशों में राजभाषा का दर्जा दिया

जा चुका है। इन प्रदेशों में रहने वाले स्वतन्त्रता में जन्मे मुसलमान बच्चे भी अब इस भाषा को देवनागरी लिपि में सीख चुके हैं। अनेक प्रख्यात् उर्दू-लेखक, फारसी से अधिक देवनागरी लिपि में छपते हैं। फिर उर्दू और उसकी फारसी लिपि को लेकर आन्दोलन मचाना मगरमच्छ के आँसुओं के अतिरिक्त कुछ नहीं है। भोलेभाले लोगों की आँखों में धूल झोंककर अपना राजनीतिक उल्लू सीधा करना मात्र है।

उर्दू के सम्बन्ध में उपन्यासकार स्वर्गीय श्री यशपाल की तर्कसम्मत परिचर्चा के बाद गृहमन्त्री श्री चरणसिंह का वक्तव्य अत्यन्त यथार्थ और सही है। सबसे अच्छी बात तो यह है कि उन्होंने उर्दू के प्रश्न पर राजनीतिक दृष्टिकोण न अपनाकर वस्तुपरक ढंग से विचार किया है। उनका कहना है कि उर्दू वास्तव में भारतीय भाषा है, परन्तु विदेशी–शासकों ने इसके ऊपर एक विदेशी (फारसी) लिपि लादकर इस पर बहुत अन्याय किया है और उसके जनभाषा हिन्दी के विशाल स्रोत में स्वाभाविक रूप से मिलजुल कर बहने में बहुत बाधा उपस्थित की है। दूसरे, बँटवारे के समय, श्री जिन्ना ने, जो उर्दू क्या कोई भी भारतीय भाषा नहीं जानते थे, उर्दू को मुसलमानों की कौमी भाषा बताकर इस भाषा के भविष्य पर पूर्णविराम लगा दिया है। उन्हीं के तर्क के अनुसार यदि फारसी लिपि में लिखी अरबी बहुल उर्दू भाषा पाकिस्तानियो की भाषा है, तो वह भारतीय मुसलमानों की भाषा कैसे हो सकती है? यदि कहा जाये कि धर्म की समानता के कारण भारतीय मुसलमानों की भाषा वह उर्दू है, जिसकी पाकिस्तान में हिमायत की गयी थी, तो उसी तर्क के अनुसार भारत के मुसलमानों पर तुर्की, अरबी, उजबक, पश्तोदरी, अजरबैजानी, चीनी आदि अनेक भाषायें विभिन्न लिपियों में लादी जा सकती हैं, जो कि ससार के अनेक देशों में मुसलमानों की भाषायें हैं। संक्षेप में उर्दू के लिए हिन्दी से अलग स्वतन्त्र-भाषा का दर्जा और फारसी लिपि का आग्रह एक राजनीतिक दुराग्रह-मात्र है। इस दुराग्रह से भारतीय मुसलमानों का हित नहीं होने वाला है। उल्टे यह उनके पैरों में बेड़ियाँ बनकर उन्हें राष्ट्रीय-धारा में बहने से रोकेगी। कल्पना कीजिये, यदि आज भारत के लगभग छः करोड़ मुसलमान उर्दू के सहारे राष्ट्रभाषा हिन्दी की प्रमुख धारा में मिल जायें, तो न केवल स्वयं उनका पिछड़ापन दूर होगा, उनकी स्त्रियों को अपने सामाजिक अधिकार मिलेंगे, अपितु देश की राष्ट्रीय-भावना में एक नयी शक्ति, एक नयी जागरूकता आ जायेगी, परन्तु राजनीतिक स्वार्थ ऐसा होने देना नहीं चाहते। जब तक अनुसूचित जातियाँ, पिछड़ा वर्ग और अल्प संख्यक न हों, तब तक उनके वोटों का डौल बैठना कठिन है। इस स्थिति का मुकाबला केवल एक गहरी-सच्ची, समर्पित राष्ट्रीय भावना के द्वारा ही किया जा सकता है और इस राष्ट्रीय भावना के निर्माण के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी अनिवार्य है।

स्वस्थ राष्ट्रीयता के विकास में एक दूसरी बहुत बड़ी बाधा देश के बहुसंख्यक वर्ग का अशिक्षित अथवा निरक्षर होना है। भाषा जहाँ आपस में जोड़ने का, एक दूसरे को समझने का काम करती है, वहाँ वह लोगों को अलग करने का काम भी बड़ी खूबी से करती है। हमारे देश में आज गरीबी और अमीरी से भी अधिक प्रभावी और अलग-अलग जो दो वर्ग हैं, वे हैं अंगरेजी जानने वाले वे आठ या दस प्रतिशत तथाकथित सभ्य और आधुनिक लोग, जिनके हाथ में देश की अस्सी प्रतिशत सत्ता और अर्थशक्ति सीमित है और दूसरे वर्ग में वे दस प्रतिशत हैं, जो अंगरेजी की गिरी जूठन उठाकर दस–पाँच शब्द गिटपिटा लेते हैं और बमुश्किल शहरी जीवन-यापन करते हैं। बाकी अस्सी प्रतिशत जनता अंगरेजी के ज्ञान से शून्य पशुवत् जीवन जी रही है। अंगरेजीदां सम्भ्रान्त वर्ग तो वैसे ही अपनी अगरेजियत के कारण राष्ट्रीय भावना से कटा हुआ है। बचा हुआ निरक्षर वर्ग भी अपने अज्ञान के कारण राष्ट्रीय-भावना-विहीन है। आप किसी भी मध्यम वर्गीय बस्ती में जाइये और किसी का पता पूछिये, आपको बताना पड़ेगा वह पंजाबी है, बंगाली या मद्रासी। केवल नाम बताने से पता आसानी से नहीं लगेगा। राजधानी की वैभव-बस्तियों में ही यदि साधारण नौकरों से पूछिये, इस घर में कौन रहता है? तो उत्तर पंजाबी, बंगाली या मद्रासी वर्गीकरण से मिलेगा। गाँवों में तो हालत और भी खराब है। बंगाली और बिहारी उत्तर प्रदेश वालों को हिन्दुस्तानी कहते हैं, जब कि दक्षिण के ग्रामीण उत्तर भारत के लोगों को केवल एक 'पंजाबी' नाम की श्रेणी में रखते हैं। हमने एक बार दिल्ली में एक बिहारी नौकर से पूछा कि वह उत्तर प्रदेश और दिल्ली वालों को हिन्दुस्तानी क्यों कहता है, क्या उसे यह नहीं मालूम कि हम सब भारतीय हैं? उसका उत्तर आँख खोलने वाला है। उसने कहा,

'हम सब भारतीय हैं, विदेशियों की दृष्टि में। आपस में तो हम हिन्दुस्तानी, बंगाली और पंजाबी ही हैं।' इस बात में बड़ा करुण, परन्तु बड़ा कटुसत्य भरा है। आज एक अन-पढ़ भारतीय सिनेमा के नायक और नायिकाओं को अधिक अच्छी तरह जानता है, परन्तु स्वयं उसकी अस्मिता क्या है, उसका देश क्या है, उसकी राष्ट्रीयता क्या है, इसका उसे रत्ती भर भी भान नहीं। ऐसी दशा में राष्ट्रीय स्वाभिमान की बात सोचना तो दूर की बात है। अंगरेजी के सहारे क्या दस–बीस प्रतिशत लोगों के द्वारा हम राष्ट्रीयता का मन्दिर रच सकते हैं? प्राचीन काल में विदेशी आक्रमणों से पहले, अशोक, विक्रमादित्य और हर्ष के समय में हिन्दू धर्म और संस्कृत भाषा ने इस राष्ट्रीयता का पोषण किया था। वाल्मीकि, व्यास और कालिदास ने अपने ग्रन्थों में उस राष्ट्रीयता का चित्रण किया था। उस समय लोग हिन्दू धर्म के अनुसार चारों तीर्थधामों की यात्रा करते थे, एक दूसरे से मिलते थे, अपनी पृथ्वी से आसमुद्र-हिमालय परिचित होते थे, संस्कृत भाषा सबके लिये भारतीय संस्कृति और आदर्शों का संवाहक थी। क्या अंगरेजी आज संस्कृत भाषा की उस प्राचीन और शाश्वत भूमिका का निर्वाह कर सकती है? क्या हम अंगरेजी के द्वारा समस्त जनसंख्या को शिक्षित कर सकते हैं? यदि नहीं, तो हमें राष्ट्र के निर्माण में राष्ट्र-भाषा की भूमिका पर गम्भीरता से विचार करना होगा और उसके लिये शिक्षा तथा जनजीवन में अपेक्षित परिवर्तन और सुधार करने ही पड़ेंगे। जनता सरकार के तत्वावधान में इस दिशा में श्री चरणसिंह ने जो कदम उठाये हैं, वे स्वागत योग्य हैं। आवश्यकता अब इस बात की है कि उन्हें राज-नीति से अलग कर व्यावहारिक रूप दिया जाये और पिछले तीस वर्षों की राष्ट्रीय-भावना-विहीन-राष्ट्रीयता को खत्म किया जाये। इस महान् युगान्तरकारी कार्य के लिए शिक्षा तथा जनसम्पर्क के समस्त साधनों के सुचिन्तित उपयोग की आवश्यकता है।

●

वृद्ध कौन ?

"मैं एक सभा में भाषण देने के लिए बुलाया गया। वहाँ मुझे वयोवृद्ध नेता का सम्बोधन मिला। मैंने कहा—मैं अभी वृद्ध नहीं हूँ!

बालक वह है, जो आगे चलने की सोचता है; जवान वह है, जो भविष्य के सपने देखता है; और वृद्ध वह है, जो अतीत के अनुभवों के साथ जवान की तरह भविष्य के सपने देखता और बालक की तरह आगे चलने की सोचता है। मेरे अपने सपने हैं भविष्य के—भारत को बनाने के—मैं मन और विचारों से अभी बूढ़ा नहीं हूँ।"

—चरणसिंह

●

मानस में रामराज्य की कल्पना

□ सीताराम चतुर्वेदी

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस के उत्तर काण्ड में श्री रामचन्द्र की राज्य व्यवस्था का जो चित्रण किया है, वह केवल काल्पनिक ही नहीं है, उसे व्यावहारिक दृष्टि से भी सम्भव बनाया गया होगा। इसीलिए आज तक हमारे यहाँ राम को आदर्श राजा और रामराज्य को आदर्श राज्य माना जाता रहा है। किन्तु इसके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि ऐसे राज्य की व्यवस्था करने वाला महा-पुरुष, सत्यनिष्ठ, शक्तिशाली, निष्पक्ष, त्यागी और निर्लोभी हो. ये गुण किसी भी युग में शासन करने वाले के लिए नितान्त अपेक्षित और आवश्यक हैं।

तुलसीदास ने उत्तरकाण्ड के १९ वें दोहे की अन्तिम अर्द्धाली से लेकर २४वें दोहे तक रामराज्य की विशेषताओं का निरूपण कहते हुए प्रारम्भ में ही बताया है कि राम के राज्य में कोई किसी से बैर नहीं करता था। बैर तभी होता है, जब परस्पर असन्तोष या एक दूसरे पर कोई अन्याय या अत्याचार करता हो। यदि राम के राज्य में कोई किसी से बैर नहीं करता था, तो इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि उनके राज्य में प्रत्येक व्यक्ति सन्तुष्ट और न्यायप्रिय होने के साथ-साथ दूसरों की भावना का आदर. दूसरे के अधिकार की रक्षा और दूसरों को सहयोग देने की कामना करता था—

बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई॥

राम के उस राज्य में सब लोग अपने-अपने वर्ग और आश्रम के धर्म के अनुसार कार्य करते चलते थे। इसीलिए उनमें आपस में किसी प्रकार की स्पर्धा या प्रतिद्वन्दिता नहीं थी। सब लोग न्यायप्रिय, ईश्वर-भक्त और परहित-कारी थे। यही कारण था कि उनके राज्य में न किसी को किसी का भय था, न कहीं अशान्ति थी, क्योंकि प्रजा में सभी लोग निर्दम्भ, कृतज्ञ, निश्छल और धर्मशील थे। उस राज्य में न तो कोई झूठा दम्भ ही करता था, न छल-कपट का व्यवहार ही करता था और सब ऐसे धर्मशील थे कि अपने साथ किये हुए उपकार के प्रति कृतज्ञ रहते थे और उपकार करने के लिए सन्नद्ध रहते थे।

बरनाश्रम निज निज धरम, निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि, नहिं भय सोक न रोग॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥

राम के राज्य में सबको ऐसी अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी कि कोई मूर्ख नहीं रह जाता था। उस समय के गुरू अत्यन्त चरित्रवान, ज्ञानशील, धर्मात्मा, विद्या-बुद्धि-विचक्षण और कृपालु होते थे कि वे उदारता के साथ अपने शिष्यों को अपनी सब विद्या दे डालते थे। इसी-लिए उनके सब शिष्य अत्यन्त गुणी, पंडित, ज्ञानी और गुणज्ञ होते थे। अच्छी शिक्षा के कारण उनमें कोई भी बुरे लक्षण आने ही नहीं पाते थे। उन गुरुकुलों का वातावरण इतना स्वच्छ, पवित्र, तपोमय और तेजोमय होता था कि सब छात्र अपने गुरुओं का आदर और सभी विद्वानों की सेवा करते थे। इसी शिक्षा के कारण उनमें ऐसी नैतिक-निष्ठा उत्पन्न हो जाती थी कि सब पुरुष एक पत्नीव्रत-धारी

होते थे और सब स्त्रियाँ पतिव्रता होती थीं। इसीलिए समाज में सच्चरित्रता और पूर्ण रूप से नैतिकता व्याप्त थी।

इसी नैतिकता की उदात्त भावना के कारण ही सब एक-दूसरे की सेवा और सहायता के लिए सन्नद्ध रहते थे। न तो कोई किसी को सताता था और न सताने देता था। इसीलिए समाज में कहीं शोक का नाम नहीं था। शुद्ध और पौष्टिक आहार तथा संयत आचार के कारण प्रजा के सभी लोग सुन्दर और निरोग थे। किसी को भी काल-धर्म-स्वभाव और गुण का कोई दुःख नहीं हो पाता था, क्योंकि चाहे जैसा काल और समय आये कोई अपने कर्त्तव्य से विचलित नहीं होता था।

राम का शासन इतना निष्पक्ष, निश्छल, स्वच्छ और दृढ़ था कि कहीं किसी प्रकार का कोई अपराध कोई कर ही नहीं पाता था। इसलिए किसी को कोई दण्ड देने का प्रश्न ही नहीं उठता था। चारों ओर के सभी शासक, राम की शक्ति से इतने प्रभावित थे कि कोई अयोध्या के राज्य की ओर आँख उठाकर देख नहीं सकता था। इसलिए वहाँ किसी को भी मन को जीतने का प्रयत्न छोड़कर अन्य किसी को जीतने की आवश्यकता नहीं रह गई थी। राम के इसी पक्षपातरहित शासन के कारण ही सारी जनता रामभक्त हो गयी थी। क्योकि सभी जानते थे कि वे अपनी प्रजा से कितना अधिक स्नेह करते हैं—

दण्ड जतिन्ह कर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहिं सुनिअ अस, रामचन्द्र के राज॥

महाकवि भवभूति ने भी राम के इस प्रजानुरंजन की भावना का निरूपण करते हुए राम से ही कहलाया है—

स्नेहदया च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति मे व्यथा॥

यदि प्रजा को प्रसन्न और सुखी रखने के लिए मुझे स्नेह, दया, सुख और यहाँ तक कि जानकी को भी छोड़ना पड़े, तो उन्हें छोड़ देने में मुझे कोई कष्ट नहीं होगा। प्रजा के प्रति इतनी प्रगाढ़ निष्ठा के कारण ही तो राम को आदर्श राजा माना गया था।

प्रजा को पहले से ही शीत, गर्मी, प्रभंजन (तूफान), वर्षा, बाढ़, भूकम्प और बिजली गिरने आदि से बचाकर रखने की ऐसी व्यवस्था कर दी गयी थी कि किसी भी आधि-दैविक विपत्ति से किसी को कभी कोई कष्ट नहीं होने पाता था। इसी प्रकार मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष आदि किसी भी प्राणी से किसी प्रकार का कोई आधिभौतिक कष्ट प्रजा को नहीं होने पाता था, क्योंकि इन सब विपत्तियों की पहले से ही कल्पना करके उनके निराकरण के सब उपाय पहले से ही इस प्रकार कर दिये गये थे कि किसी प्रकार की आधि-भौतिक, आधिदैविक विपत्ति से प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट कभी होने ही न पावे।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज्य नहिं काहुहिं व्यापा॥
विधु महिपूर मयूखन्हि, रबि तप जेतनेहि काज।
मांगे बारिद देहिं जल, रामचन्द्र के राज॥

राम ने अपने राज्य में भी अच्छी आर्थिक-व्यवस्था कर दी थी कि कोई भी व्यक्ति न तो दरिद्र रह गया था और न दीन (निस्सहाय)। गुणी होने तथा अर्थकरी विद्या में पारंगत होने के कारण सब लोग किसी न किसी गुण, कला या व्यवसाय में इतने सुदक्ष, स्वावलम्बी और सम्पन्न हो गये थे कि दरिद्रता उनके पास तक नहीं फटकने पाती थी। राज्य-कोष की समृद्धि तथा अन्य देशों से व्यवसाय बढ़ाने की दृष्टि से पर्वतों की खानों से स्वर्ण, रजत, रत्न आदि भी निकाले जाते थे और समुद्र भी अपनी लहरों से जो सीपियाँ बाहर उछाल फेंकता था उनसे मोती निकाले जाते थे—

'नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।' तथा
'प्रगटीं गिरिन्ह बिबिध मनि खानी।'
राम राज कर सुख संपदा। बरनि न सकहिं फनीस सारदा॥
सागर निज मरजादा रहहीं। डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं॥

राम के राज्य में प्रजा को स्वस्थ, सशक्त और वीर्य-शाली बनाने के लिए बहुत अधिक दूध देने वाली गौओं का विधिवत् पालन और सरक्षण किया जाता था। गोवंश की

उन्नति के लिए ऐसा प्रयास किया जाता था कि उस समय सभी गौएँ कुंडीध्नी (कूंडा भर दूध देने वाली) थीं। पशु पालन की इस उत्कृष्ट योजना के कारण ही जनता को निरन्तर इतनी अधिक मात्रा में इतना अधिक दूध मिलता रहता था कि उस समय सब लोग निरोग और सशक्त बने रहते थे।

केवल मनुष्यों की ही नहीं, वनस्पति जगत और कृषि की व्यवस्था भी ऐसी सुन्दर और सटीक थी कि सभी प्रकार के वृक्ष नियमतः फलते-फूलते रहते थे और खेतों में सदा अच्छी खेती-बाड़ी लहलहाती रहती थी। लताओं और वृक्षों में इस कौशल से मधु-मक्खियाँ पाली जाती थीं कि उनके छत्तों से निरन्तर स्वच्छ, सुन्दर, स्वादिष्ट मधु रिसता रहता था। राज्य के सरोवरों में रंग-बिरंगे कमल लगा दिये गये थे, जिनसे सरोवर की शोभा ही बढ़ जाती थी, साथ ही प्रजा के मस्तिष्क और हृदय को शक्ति देने वाले कमलगट्टे (बीज), कमलककड़ी (कमल की जड़) और उष्णता निवारण के लिये कमल के पत्ते भी मिल जाते थे, जिस पर भोजन परोसकर खाने से भी शक्ति मिलती है। राम के राज्य में सब जीवों को ऐसा साध लिया गया था कि हाथी और सिंह भी न तो आपस में लड़ते थे, न परस्पर आक्रमण करते थे, वरन् आपस का बैर भुलाकर बड़े प्रेम के साथ-साथ घूमते-फिरते थे। इतना ही नहीं, प्रजा के मन में भी जीवों के प्रति ऐसा प्रेम उत्पन्न कर दिया गया था कि घर-घर पशु-पक्षी पले हुए थे और मृग कुलाँचे मारते हुए निर्भय जहाँ-तहाँ विचरते रहते थे :

'कूजहिं खग मृग नाना बृन्दा ।
अभय चरहिं वन करहिं अनंदा ॥'
'ससि सम्पन्न सदा रह धरनी ।'
'लता विटप माँगे मधु चवहीं ॥'
'रहहिं एक संग गज पंचानन ।'
'सरसिज संकुल सकल तड़ागा ।'

कुओं और बावड़ियों के जल के अतिरिक्त नदियों के जल की स्वच्छता का भी पूरा ध्यान रखा जाता था कि उनका जल किसी प्रकार के गन्दे नालों या दूषित प्रवाहों के कारण अपेय न हो जाये। निरन्तर ऐसा प्रयत्न होता रहता था कि नदियों का जल स्वच्छ बना रहे, जिससे कि स्नान करने और जल पीने से किसी प्रकार के रोग या कष्ट की आशंका मनुष्यों या पशुओं के लिए न हो।

सरिता सकल बहहिं बर-बारी ।
सीतल अमल स्वादु सुखकारी ॥

राम के राज्य में सबसे प्रमुख बात यह थी कि सब लोग स्वयं अपने हाथ से अपना काम करते थे, यहाँ तक कि सेवकों के होते हुए भी सीताजी स्वयं घर का सारा काम-काज करती थीं :

यद्यपि गृह सेवक सेवकिनी। विपुल सदा सेवा बिधि गुनी ॥
निजकर गृह परिचरजा करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई ॥

यही कारण है कि आज इस युग में भी लोग स्वराज्य और सुराज्य से बढ़कर रामराज्य की आकांक्षा करते हैं, क्योंकि रामराज्य तो सुराज्य की चरम सीमा थी। उनकी शिक्षा-नीति, धर्म-नीति, समाज-नीति, अर्थ-नीति और राज्य-नीति अपनी पराकाष्ठा तक पहुँच चुकी थी। इसीलिए गाँधी जी ने भी रामराज्य की स्थापना करने की कामना की थी, जिसके लिये प्रयास करते रहना हम सब का परम पुण्य-धर्म है।

स्वामी विवेकानन्द की देन

□ डा० कर्णसिंह
संसद् सदस्य

क्या बात है कि मानव-इतिहास के लम्बे और टेढ़े-मेढ़े रास्ते में जिन अनेक व अन्य महान सभ्यताओं का जन्म हुआ, वे तो नष्ट हो गयीं, तथापि सदियों और युगों से भारत की सभ्यता बराबर कायम है। संसार में अन्य महान सभ्यतायें पैदा हुई हैं; यूनान था, रोम था और बैबिलोनिया था, मध्य और दक्षिण अमरीका की महान् सभ्यता थी। लेकिन आज ये सभ्यतायें अपने ध्वंसावशेषों में अथवा संग्रहालयों की चहारदीवारी या विद्वानों की स्मृति में ही जीवित हैं। किन्तु भारत, लाखों धक्कों और लाखों संकटों के बावजूद ऐसी ऊँच-नीच के बावजूद, जिनमें मामूली सभ्यतायें धूल में मिल गयी होतीं, आज भी अपनी सभ्यता के स्वर्णिम प्रभात के साथ जीवन्त और शानदार सम्बन्ध कायम रख रहा है। इसका कारण क्या है? भारतीय इतिहास के लम्बे पटल पर जब मैं विहगम-दृष्टि डालता हूँ, पीछे की ओर मुड़कर देखता हूँ तब मुझे लगता है कि इसका मुख्य कारण यह है कि जब कभी इस देश में ज्ञान-दीप बुझने को हुआ है, जब कभी अज्ञान और विनाश के काले बादल भारत पर संकट बनकर छाये हैं, तब-तब यहाँ ऐसे महान् स्त्री और पुरुषों का जन्म हुआ है, जिन्होंने दीप को फिर से प्रज्ज्वलित और देश की आशा को फिर से दीप्तिमान किया है। अष्ठमी की उस प्रगाढ़ अन्धकार से परिपूर्ण रात्रि में कंस के त्रास और आतंक के बीच जन्म लेने वाले कृष्ण का उदाहरण तो है ही; किन्तु इसी प्रकार भारत के लम्बे इतिहास में बुद्ध का जन्म हुआ, शंकर का जन्म हुआ, देश के विभिन्न भागों में महान सन्तों और भक्तों ने जन्म लिया। जिस समय ऐसा लगने लगता है कि अब सम्पूर्ण भारत अन्धकार के गर्त में डूबने वाला है, ठीक उसी समय में महापुरुष आते है और हमारे मन को पुनः प्रकाश से भर देते हैं। हमारे इतिहास के प्रभातकाल से ही जो शाश्वत विश्वास की ज्योति भारत के जन-मानस में प्रज्ज्वलित रही है, उसे वे फिर से जगा जाते हैं। मुझे आशा है, आप सहमत होंगे कि यही मुख्य कारण है कि जहाँ संसार की अन्य महान सभ्यताएँ जर्जर होकर ध्वस्त हो गयीं, वहीं भारत की हस्ती कायम है।

भारत के इतिहास में एक ऐसा अवसर १९वीं शताब्दी के मध्य में आया था। १८५७ के बाद विदेशी शासन के विरुद्ध प्रतिरोध की अन्तिम चिनगारी तक कुचल दी गयी थी। सारा भारत पददलित और टूटा हुआ अपने विदेशी विजेताओं के पाँवों में पड़ा था। उस समय की यह दासता केवल राजनीतिक या सामरिक-पराधीनता मात्र नहीं थी, बल्कि उससे भी ज्यादा यह अध्यात्मिक और बौद्धिक पराधीनता थी। भारत न केवल अपने में विश्वास खोने लगा था, बल्कि वह स्वयं अपने अतीत और अपनी परम्परा की निन्दा करने लगा था। उस समय ऐसा लगता था कि हजारों साल तक जीवित रहने के बाद अन्ततः भारत भी इतिहास की नष्ट हो गयी सभ्यताओं के भग्नावशेषो में शामिल होने को तैयार है।

लेकिन १९वीं शताब्दी में फिर से क्या हुआ? जैसा कि आप जानते हैं, जब रात घनी अँधेरी थी, ठीक उस समय जब कि कोई आशा-किरण नहीं दिखायी पड़ती थी, वास्तव में एक नया पुनरुत्थान आरम्भ हुआ। यह पुनर्जागरण

पहले बंगाल में आरम्भ हुआ—बंगाल , जो अंग्रेजों द्वारा जीता जाने वाला सबसे पहला प्रान्त था, वह प्रान्त जिसने अंग्रेजी शासन का सबसे पहला धक्का सहा था। और और प्रान्तों में यह शासन बाद में आया। भारतीय-पुनर्जागरण की यह कहानी एक शानदार कहानी है, जिसकी शुरूआत होती है राजा राममोहन राय और ब्रह्म समाज की स्थापना के साथ। बाद में आदि ब्रह्मसमाज और भारतीय ब्रह्म-समाज की स्थापना हुई, जिसके नेता थे महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर और केशवचन्द्र सेन; तत्पश्चात् महाराष्ट्र में रानाडे और भण्डारकर द्वारा प्रार्थना-समाज की स्थापना हुई; फिर पंजाब में आर्य समाज की नींव पड़ी, जिसके प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती साक्षात् शक्ति-पुंज थे। इस प्रकार एक-एक करके देश भर में अनेक सुधार आन्दोलन फैल गये। थियोसाफिकल सोसायटी ने भी हमारे अन्दर नवजागरण लाने में बड़ा महत्वपूर्ण योगदान किया। लेकिन ये सब एक अर्थ में हिन्दू-विचारधारा और हिन्दू-परम्परा की मुख्य-धारा के मात्र किनारों को ही छूते थे। देश में वास्तविक क्रान्ति के लिए केन्द्र-स्थल में क्रान्ति होनी आवश्यक थी। केवल किनारे-किनारे पर क्रान्ति होना काफी नहीं था। और यह क्रान्ति हुई। यह क्रान्ति श्री रामकृष्ण परमहंस के इर्द-गिर्द हुई, जो संसार की महानतम विभूतियों में से एक थे।

यह एक अत्यन्त अद्भुत बात थी कि श्री रामकृष्ण जैसा गाँव का अशिक्षित और निरक्षर व्यक्ति कलकत्ता आये और करोड़ों व्यक्तियों के लिए अध्यात्मिक प्रकाश-स्तम्भ बन जाये; लेकिन ऐसा ही हुआ। अपनी अनोखी साधना और अनोखी सिद्धि के जरिये श्री रामकृष्ण उस समय के बड़े-बड़े प्रबुद्ध लोगों और राजनीतिज्ञों को अपने चरणों में आकृष्ट कर सके; दक्षिणेश्वर के श्री रामकृष्ण भारत में फैले उस समय के अन्धकार में प्रकाश और आशा के प्रज्ज्वलित प्रकाश-स्तम्भ बन गये। श्री रामकृष्ण की यह कहानी अत्यन्त रोचक कहानी है, जिसकी चर्चा यहाँ मैं नही करूँगा। विश्वास करता हूँ कि आप सब उसे जानते हैं। लेकिन मैं जो बात कहना चाहूँगा वह यह है कि श्री रामकृष्ण इस देश में नयी अध्यात्मिक-जागृति के प्रतीक थे। उन्होंने अपने चरणों में जिन अनेक लोगों को आकृष्ट किया, उनमें एक थे नरेन्द्रनाथ दत्त, जो बाद में स्वामी विवेकानन्द के रूप में सारे संसार में प्रसिद्ध हुए।

स्वामी जी का जीवन बहुत स्वल्प था। वह मात्र ३९ वर्ष जीवित रहे। और फिर भी इस संक्षिप्त अवधि में उनकी उपलब्धि कितनी शानदार थी ! उनका जीवन रोचक और दिलचस्प है; उनका बालपन, उनका गुरु से मिलना, उनका शिष्यत्वकाल; फिर गुरु की मृत्यु के बाद उनका भारत-भ्रमण, जिसमें वे राजाओं से लेकर भिखारियों तक से मिले और राष्ट्र की आवश्यकताओं का परिचय प्राप्त किया, फिर उनकी पश्चिम-दिग्विजय, शिकागो में सर्व-धर्म सम्मेलन, जिस पर वह निजी व्यक्तित्व के बल पर छा-से गये, अमरीका और हालैंड में उनका काम, धर्म-विजेता के रूप में उनकी शानदार भारत वापसी, कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक उनके भाषण, जिन्होंने इस राष्ट्र को प्रेरित और पुनर्जीवित किया; बेलूरमठ की स्थापना और अन्त में १९०२ में उनकी महासमाधि। अपने पीछे वह भारतीय इतिहास में एक शानदार और अनोखा अध्याय छोड़ गये।

स्वामी विवेकानन्द ने अपने अत्यन्त संक्षिप्त जीवनकाल में अपने समय की आवश्यकतानुसार हिन्दू धर्म की फिर से उद्घोषणा कर दी। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, सत्य की यह पुनर्घोषणा ही भारतीय-सभ्यता की अविच्छिन्नता और अमरता का रहस्य है। सत्य सदैव वही रहता है, क्योंकि वह शाश्वत है। यदि कोई अध्यात्मिक सत्य है, तो वह युग-युग में या समय-समय पर बदल नहीं सकता है। लेकिन विभिन्न युगों की आवश्यकताओं के अनुसार जो चीज बदलती है, वह उस सत्य की घोषणा है या सत्य का प्रस्तुतीकरण है। और १९वीं शताब्दी के अन्त में स्वामी विवेकानन्द लगभग अकेले ही हिन्दू-धर्म की ऐसी पुनर्व्याख्या कर सकने में सफल हुए, जो युग की आवश्यकताओं को पूरा कर सके। उनका सन्देश बहुत हद तक उस नवजागरण के लिए जिम्मेदार था, जिसने अनेक रूप धारण किए और जिनमें से एक था जबर्दस्त राजनीतिक आन्दोलन। आज उनके संदेश की पहले से कहीं ज्यादा आवश्यकता है; कारण, आज हालाँकि हमने राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है, फिर भी हम निर्जीव-बौद्धिक और अध्यात्मिक शून्यता का अनुभव कर रहे हैं। जो पुराना था, वह हमेशा के लिए टूट

रहा है, जो नया है उसे अभी भी जन्म लेना है और हमारी पीढ़ी इन दोनों के बीच अपने को खड़ा पाती है, किसी नये एकीकरण के तरीके के लिए, किसी नयी दृष्टि की प्रतीक्षा में जो, समस्याएँ हमारे सामने हैं, उनका किसी प्रकार एकीकरण करने के लिए। ऐसे समय, मेरी समझ में स्वामी विवेकानन्द का सन्देश बहुत उपयोगी हो सकता है।

स्वामीजी ने एक बार लिखा था कि उनके आदर्श को चन्द शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है। और यह आदर्श था : मनुष्य को उसके देवत्व की शिक्षा देना और बताना कि किस प्रकार वह इस देवत्व को अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में अभिव्यक्त कर सकता है। यह उनका बुनियादी सन्देश था। उनकी शिक्षाओं के अनेक पहलू हैं। मैं समझता हूँ कि सबसे पहला है—सभी धर्मों की एकता। अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता मात्र नहीं—मैं इस बात पर जरा जोर देना चाहूँगा, क्योंकि सहिष्णुता तत्त्वतः एक नकारात्मक रवैया है। सहिष्णुता का अर्थ है—विरोध का अभाव। स्वामी विवेकानन्द ने यह चीज नहीं सिखायी। उन्होंने सब धर्मों की एकता को सकारात्मक रूप में स्वीकार किया था। वह ऋग्वेद के इस प्राचीन कथन की शिक्षा दे रहे थे :

"एकं सत्, विप्राः बहुधा वदन्ति"

अर्थात् मुण्डकोपनिषद् के इस कथन की शिक्षा दे रहे हैं:

"यथा नद्यः स्यंदमानाः समुद्रे
अस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय
तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्तः
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।"

यही चीज थी, जो स्वामी जी ने सिखायी थी। उनके लिए यह कोई बुद्धि-विलास की वस्तु नहीं थी, बल्कि इसमें उनकी गहरी अनुभूति थी। आपको यह पता होगा कि श्री रामकृष्ण ने अपनी अनोखी साधना के दौरान विभिन्न धर्मों की एकता को सचमुच अनुभव किया था। कई दिनों तक वह एक मुसलमान के रूप में रहे थे और उन्हें एक दिव्य पुरुष के दर्शन हुए, जो उनके विचारों से इस्लाम के पैगम्बर थे। वह एक ईसाई की भाँति भी रहे और उन्हें ईसाई धर्म के पैगम्बर ईसा मसीह के दर्शन हुए। अतः श्री रामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द ने धर्मों की जिस एकता का उपदेश किया, वह मात्र कोई ऐसी चीज नहीं थी, जो राजनीतिक दृष्टि से लाभदायक है; क्योंकि इस देश में हमारे बीच गैर-हिन्दुओं की एक बहुत बड़ी संख्या है। (बहुत से लोग इसी दृष्टि से धर्म-निरपेक्षता का उपदेश करते हैं।) यह धर्म-निरपेक्षता श्री रामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द की धर्म-निरपेक्षता नहीं थी। उनकी धर्म-निरपेक्षता दो धर्मों की दीप्तिमान और क्रियाशील एकता थी। मैं समझता हूँ कि यह ऐसी चीज है, जिसे आज हमें एक बार फिर समझना चाहिए। हम अक्सर तथाकथित धर्म-निरपेक्ष रवैया अपना लेते हैं, क्योंकि हमें लगता है कि राजनीतिक दृष्टि से ऐसा करना जरूरी है। राजनीतिक दृष्टि से भारत में हिन्दुओं के अलावा करोड़ों मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, सिख, जैन आदि रहते हैं। मैं नहीं समझता कि इस सन्दर्भ में राजनीतिक दृष्टि अपनाना ठीक चीज है। सम्भव है कि इसके संकीर्ण राजनीतिक लाभ हों, लेकिन सच्ची और ठीक दृष्टि तो यही है कि सभी धर्मों के लक्ष्य की समानता को स्वीकार किया जाये और मेरी दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द की एक सबसे महत्वपूर्ण शिक्षा यही है।

एक दूसरा पहलू है मनुष्य का दिव्यत्व। सचमुच देखें, तो ईश्वर का दिव्यत्व कोई नयी चीज नहीं है, क्योंकि आखिरकार यदि कोई ईश्वर है, तो उसका दिव्य होना निश्चित है। इसमें कोई विशेष बात नही है। लेकिन वेद और उपनिषद् हमें क्या सिखाते हैं? वे मनुष्य के ईश्वरत्व की बात कहते हैं। उपनिषदों में मनुष्य जाति के लिए एक अद्भुत शब्द का प्रयोग किया गया है : 'अमृतस्य पुत्राः'। कितनी साहसिक और शक्तिशाली कल्पना है यह! अर्थात् इस धरती पर जन्म लेने वाला प्रत्येक मनुष्य, चाहे वह धनी हो या निर्धन, हिन्दू हो, मुसलमान या किसी और धर्म को मानने वाला हो, चाहे वह भारत में पैदा हुआ हो या दक्षिणी ध्रुव प्रदेश में या संसार के किसी भी अन्य भाग में अमृत पुत्र है। अमरत्व उसका जन्म-सिद्ध अधिकार है। यह एक ऐसी चीज है जिस पर स्वामी जी सदैव जोर देते थे। वह सदैव कहा करते थे कि केवल धनी लोगों अथवा किसी एक सम्प्रदाय या जाति के लोगों को ही दिव्य नहीं समझा जाना चाहिये, बल्कि सारी मानव जाति ही दिव्य है। और

इसीलिए मानव की दिव्यता की यह कल्पना विभिन्न विश्वासों और विभिन्न राष्ट्रीयताओं में कोई भेद नहीं करती और इसकी परिधि में सम्पूर्ण मानवता शामिल है।

मनुष्य के देवत्व की इस कल्पना और व्यक्ति की गरिमा में घनिष्ठ सम्बन्ध है। स्वामीजी के समय भारत में जो दुःख और कष्ट का वातावरण था, उसे देखकर उनका मन बहुत व्यथित था। वह अक्सर कहा करते थे कि धर्म भूखे लोगों के लिए नहीं है; यदि हम चाहते हैं कि कोई व्यक्ति धर्म-निष्ठ हो, तो सबसे पहले हमें चाहिए कि उसे कम से कम न्यूनतम आवश्यकता भर भोजन दें, तन ढँकने को वस्त्र दें, सिर छिपाने को जगह दें। केवल तभी हम उससे सचमुच आत्मा-परमात्मा के बारे में सोचना आरम्भ करने की अपेक्षा कर सकते हैं। यहाँ भी अक्सर पाश्चात्य व्याख्याकार एक गम्भीर गलती करते हैं। वे सोचते हैं कि हिन्दू-धर्म निर्धनता और त्याग की शिक्षा देता है और इसीलिए आर्थिक विकास के लिए उसमें कोई प्रेरणा, कोई प्रोत्साहन नहीं है। अगर यह धृष्टता न मानी जाय, तो मैं कहूँगा कि यह बिलकुल अनर्गल बात है। हिन्दू-धर्म जिस गरीबी की शिक्षा देता है वह स्वैच्छिक त्याग है—यह बुद्ध की गरीबी है, जिन्होंने गरीब बनने के लिए सर्वस्व का त्याग कर दिया। यह कोई आनुवंशिक गरीबी नहीं है। ऐसी बात नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति को गरीब ही पैदा होना चाहिए और गरीब पैदा होने से ही प्रत्येक व्यक्ति को आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति हो जायेगी। हमें तो यह सब स्वयंसिद्ध लगता है। लेकिन मैंने पश्चिम के बहुत से लोगों को, यहाँ तक कि कई भारतीयों को कहते सुना है कि 'देखो, हिन्दू-धर्म गरीबी की शिक्षा देता है।' नहीं, ऐसी बात नहीं है। हिन्दू-धर्म जिस गरीबी की बात कहता है वह तो स्वेच्छा से अपनायी हुई गरीबी है। और आप स्वेच्छा से गरीब तभी हो सकते हैं जब आप धनवान हों। जन्म से गरीब व्यक्ति के लिए, भिखारी के लिए उसकी गरीबी में कोई आध्यात्मिक लाभ नहीं है। इसीलिए स्वामी विवेकानन्द व्यक्ति की गरिमा पर हमेशा जोर दिया करते थे। उनके समय में हिन्दू-धर्म के नाम से जो निषेध और अन्धविश्वास प्रचलित थे और जो आज भी कुछ हद तक भारत के स्वरूप को विरूपित और विकृत बनाये हुए हैं, व्यक्ति की गरिमा उन सब की उपेक्षा करती है। उदाहरण के लिए अस्पृश्यता के सवाल को ही लें। यदि प्रत्येक मनुष्य के अन्दर दैवी-तत्त्व हैं, तो फिर किस तर्क से, बुद्धि के किस करतब से हमारे लिये यह कह सकना सम्भव है कि अमुक व्यक्ति अस्पृश्य है और उसका स्पर्श करने से आप दूषित होते हैं या उसको मन्दिर में प्रवेश करने देने से आप उस मन्दिर को अपवित्र और दूषित करते हैं, जिसमें वह प्रवेश करता है? मैं समझता हूँ कि वेदों और उपनिषदों की भावना का इससे ज्यादा बड़ा विरूपीकरण और कुछ नहीं हो सकता। स्वामीजी कहा करते थे कि यदि तुम्हारा धर्म इतनी कमजोर और तुच्छ वस्तु है, जो स्पर्श-मात्र से भंग हो जाती है, तो उसे टूट जाने दो; यह रसोईघर का धर्म जितनी जल्दी टूटकर चूर-चूर हो जाये, उतनी ही जल्दी भारत अपनी शक्ति और प्राचीन गौरव को फिर से प्राप्त कर लेगा। इस चीज की शिक्षा स्वामीजी ने लगातार दी।

एक समय था जब भारत के लोग भारत से बाहर के देशों में गये और उन्होंने एशिया के कोने-कोने में भारत के संदेश का प्रचार किया। और फिर एक ऐसा समय आया कि यदि कोई व्यक्ति विलायत जाता था, तो विदेश में रहते हुए उसमें जो दोष आ गये थे, उन्हें धो डालने के लिए पहले उसे प्रायश्चित करना पड़ता था, तभी जाकर वह अपने समाज में दुबारा प्रवेश पा सकता था। हिन्दू-धर्म के निर्भीक और सर्व-संग्राहक स्वरूप तथा सदियों से हिन्दू धर्म को अपरूप करने वाले इन संकीर्ण अन्धविश्वासों और मदान्धताओं के बीच क्या इससे भी ज्यादा अन्तर्विरोध हो सकता था! इसीलिए स्वामीजी ने इसके विरुद्ध अपनी घन-गर्जना की। हिन्दू-धर्म के नाम से चलने वाली बहुत-सी चीजों के वह घोरतम आलोचक थे, क्योंकि व्यक्ति की गरिमा और देवत्व की उनकी कल्पना के विरुद्ध पड़ने वाली प्रत्येक वस्तु उनके लिए अभिशाप-रूप थी।

इसी विचार पर सामाजिक सेवा की कल्पना का उद्भव होता है। केवल हिमालय की कन्दराओं में बैठकर ही वैयक्तिक मुक्ति प्राप्त की जा सकती है, इसमें वह विश्वास नहीं करते थे। उनका तो विश्वास था कि दरिद्रनारायण की, दुखी मानवता की सेवा के द्वारा भी मनुष्य अपनी वैयक्तिक साधना का विकास कर सकता है। यही कारण है कि उन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की, जो आज भी

न केवल भारत, बल्कि संसार भर में बहुमूल्य सेवाकार्य कर रहा है। अब देखें तो यह एक महत्वपूर्ण समस्या भी है, क्योंकि हममें से अनेक लोग ऐसे हैं, जो इन सांसारिक झंझटों, उलझनों और संघर्षों में सक्रिय रूप से लिप्त होने के बजाय हिमालय की सुन्दर शान्ति की छाया में जाने और वहाँ बैठकर ब्रह्म की साधना करने की लालसा करते हैं। संयोग है कि मैं हिमालय के क्षेत्र का ही रहने वाला हूँ और इसलिए आप में से अधिकाँश लोगों से ज्यादा समझ सकता हूँ कि पर्वतों का आकर्षण क्या चीज है। जब तक पर्वतों पर रहे न हों, जब तक आप वहाँ पैदा न हुए हों और आपका लालन-पालन वहाँ न हुआ हो, तब तक आपके लिए पर्वतों के विशेष गुण को, पर्वतों के विशेष आकर्षण को समझ सकना कठिन है। और इसीलिए राग और विराग के बीच जितना संघर्ष पैदा होता है, उसे समझ सकना कठिन है। लेकिन स्वामी जी ने एक अनोखी चीज की। उन्होंने पश्चिम की सघन सक्रियता को पूर्व के गहरे मनन के साथ मिला दिया, और स्वयं अपने व्यक्तित्व में दोनों सभ्यताओं का एक ज्वलन्त सश्लेषण प्रस्तुत किया। उन्होंने हमें दिखाया कि अपने आध्यात्मिक विकास की खातिर हमारा हिमालय की कन्दराओं में जाना जरूरी नहीं है, बल्कि जरूरी यह है कि भारत की जनता के कष्टों को दूर किया जाये। और मैं समझता हूँ कि यह कल्पना आज भी ज्यादा नहीं, तो उतनी ही ठीक है, जब स्वामी जी ने उसकी पहली बार व्याख्या की थी।

और फिर भारत के प्रति उनका गहरा ज्वलन्त प्रेम देखें। यह भी उनकी शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग है। जब उन्होंने कन्याकुमारी में भारत-माता के चरणों में उस जगह बैठकर विश्राम किया, जहाँ तीन सागरों के जल आपस में मिलते हैं और इस महान तथा शानदार देश की ओर देखा जिसने हजारों वर्षों से हमारी जाति को जीवन प्रदान किया है, तब उन्हें एक ऐसे भारत के दर्शन हुए, जिसका आध्यात्मिक, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से फिर से जन्म हुआ था, एक ऐसा भारत, जो पुनरुज्जीवित हो गया था, एक ऐसा भारत जिसमें लाखों लोगों के कष्ट और दुःख दूर हो जायेंगे, एक ऐसा भारत जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने को भारतीय कहने में गर्व का अनुभव करेगा। यही स्वप्न था, जो उन्होंने देखा था। और यही स्वप्न था, जिसे अपने भाषणों के जरिये उन्होंने इस देश के लोगों में फैलाने की कोशिश की थी।

मुझे लगता है कि आज उनके सन्देशों की पहले से भी ज्यादा आवश्यकता है, क्योंकि यद्यपि हमने राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है, फिर भी हम तुच्छ-निष्ठाओं को प्रकट होते देखते हैं; तुच्छ क्षेत्रीयता, भाषावादिता, जातीयता और राजनीतिक गुटबन्दियाँ मिल-जुलकर भारत की उस एकता को नष्ट करने के लिए सन्नद्ध हैं, जिसे हमने इतने जबर्दस्त संघर्ष और इतने जबर्दस्त त्याग के बाद प्राप्त किया है। लोग उत्तर और दक्षिण, पूर्व और पश्चिम की बात करते हैं और वे अपनी संकीर्ण-निष्ठाओं की बातें करते हैं; लेकिन कितने लोग हैं जो इस एकीकृत और क्रियाशील भारत की ज्वलन्त तस्वीर की बात करते हैं, जिसे स्वामी विवेकानन्द ने हमारे सामने प्रस्तुत किया था।

मैं उन लोगों में से नहीं हूँ, जो किसी क्षेत्र या किसी भाषा की निन्दा करते हों। प्रत्येक भाषा का महत्व है, उसका अपना स्थान है, लेकिन वह सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है। उसका स्थान, उसका महत्व हमारे राष्ट्र के हित के आगे गौण है। आज ये सब इस बात के लक्षण हैं कि स्वामी विवेकानन्द ने जो स्वप्न देखा था वह फिर धुँधलाने लगा है; आज इस बात के संकेत मिल रहे हैं कि काश्मीर से कन्याकुमारी तक और द्वारिका से कामरूप तक फैले इस महान् राष्ट्र की एकता को खतरा उत्पन्न हो गया है—और इस बार यह खतरा किसी वाह्य-शत्रु की ओर से उतना नहीं है, जितना कि हमारी आन्तरिक कमजोरियों और हमारी आन्तरिक फूट की तरफ से है। मुझे लगता है कि स्वामी विवेकानन्द ने भारत का जो स्वप्न देखा था उसे बार-बार दोहराने की जरूरत है, ताकि हम अपने सामने भारत की एकता का वही आदर्श रख सकें।

स्वामीजी का स्वप्न केवल भारत तक ही सीमित नहीं था, क्योंकि उनके अन्दर अन्ध-देशभक्ति जैसी कोई चीज नहीं थी। उनको लगता था कि सभी देशों के प्रति भारत का एक कर्त्तव्य है। भारत में जितने भी महान विचारक हुए हैं उन सभी का ऐसा विचार रहा है: स्वामी विवेकानन्द तो थे ही, उनके अलावा श्री अरविन्द थे—जिन्होंने विकासशील अध्यात्मवाद की कल्पना प्रस्तुत की और प्रमुख भूमिका निभायी है। इधर हाल में जवाहरलाल नेहरू हुए

जिन्होंने एक मुक्त और व्यापक अन्तर्राष्ट्रीयतावाद की कल्पना की थी। यह एक ऐसी परम्परा है जो भारत में लगातार चली आ रही है, क्योंकि यदि मनुष्य के देवत्व को स्वीकार कर लें, तो आप अन्ततः इस देवत्व को भारत निवासियों पर ही आरोपित करके रुक नहीं सकते, क्योंकि पाकिस्तान में रहने वाले या चीन में रहने वाले लोग भी उसी मानव-जाति के सदस्य हैं, जिसके सदस्य भारत के निवासी हैं। अतः हमारे राजनीतिक मतभेदों के बावजूद हमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की कल्पना को कायम रखना है और उसी की स्वीकृति के लिये जोर देना है। स्वामी विवेकानन्द का विचार था कि इस विश्व-चेतना को जगाना भारत का विशेष दायित्व होगा।

और हम यह सब पा सकें, इसके लिए स्वामीजी ने हमसे क्या होने की अपेक्षा की थी? उन्होने हमसे शक्तिवान होने को कहा, असुरों की शक्ति वाला नहीं, हिटलर या माओ जैसी शक्ति वाला नहीं, बल्कि दैविक शक्तिवाला—उन्होंने आत्मबली, निर्भय, अभ्यस्त होने की शिक्षा दी। उपनिषद् भी कहते हैं : नायमात्मबलहीनेन लभ्यः। दुर्बल मनुष्य आत्मोपलब्धि नहीं कर सकता। यदि आप दुर्बल हैं तो आप इस जीवन में कोई भौतिक या अध्यात्मिक उपलब्धि नहीं कर सकते। इसलिए स्वामीजी ने अध्यात्मिक शक्ति का सिद्धान्त बताया। यह सिद्धान्त कि हमें शारीरिक, बौद्धिक और अध्यात्मिक दृष्टियों से शक्तिशाली बनना है। जब हम शक्तिशाली होंगे, तभी हम विदेशी शासन का जुआँ उतारकर फेक सकेंगे, और विदेशी शासन से भी जो ज्यादा घातक है, उस अपनी स्वयं की कमजोरी और अपने भय का जुआँ उतारकर फेंक सकेंगे, क्योंकि अन्ततः यदि हमारी आत्मा स्वतत्र है, तो ऐसी कोई शक्ति नहीं है, जो हमें गुलाम बना सके। भारत के लम्बे इतिहास में यह बात बार-बार सिद्ध हो चुकी है। स्वामी जी ने कहा था कि यदि कोई चीज तुम्हें कमजोर बनाती है, तो वह सच हो ही नहीं सकती। उनके इन शब्दों में प्रखर विवेक और शक्ति भरी हुई है। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है : "और सत्य की कसौटी यह है—कोई भी चीज जो तुम्हें शारीरिक, बौद्धिक और अध्यात्मिक रूप से कमजोर बनाती है, उसे विष समझकर त्याग दो। उसमें कोई जीवन नहीं है, वह सच हो ही नहीं सकती। सत्य तो शक्तिवर्द्धक है।"

यह वह था जो उन्होंने सिखाया। और यही चीज है जो विशेष रूप से हमारी युवा पीढ़ियों को सीखना-समझना है। आज मैं अपने सामने अनेक युवा लोगों को देखता हूँ जो अध्ययन कर रहे हैं। युवकों के बारे में स्वामी जी कहा करते थे : हम ऐसे युवा भारतीय चाहते हैं, जिनका शरीर पत्थर और कलेजा इस्पात जैसा हो। और अगर हमें इस सदी के आरम्भ में ऐसे युवकों की जरूरत थी, तो आज तो हमें उनकी और भी ज्यादा जरूरत है। और भारत के युवाजन इससे ज्यादा बड़ी बात और कोई नहीं कर सकते कि स्वामी विवेकानन्द ने हमें जो दिव्य-सन्देश दिया, उससे वे प्रेरणा ग्रहण करें। मेरी समझ में स्वामी विवेकानन्द का यही सन्देश है। यह क्रियाशील भारत का स्वप्न है। आज हमें उस स्वप्न को साकार करना है।

जैसा कि अभी बताया गया, स्वामी जी ने जो स्वप्न देखा था, क्या हम उसे साकार करने की क्षमता रखते हैं? यदि हम स्वामीजी द्वारा रखे गये स्वप्न को साकार करने का संकल्प नहीं करते तो, भाषण देना या भाषण सुनना निरर्थक है। आज वर्ष का प्रथम दिन है। स्वामीजी ने नव-भारत के निर्माण का जो कार्य हमारे सामने रखा था, उस कार्य को करने का फिर से सकल्प करने के लिए यह दिन भी उतना ही अच्छा है, जितना कि कोई भी दिन होता। बेशक कठिनाइयां सामने आयेंगी, यह कोई आसान रास्ता नहीं है। यह रास्ता सँकरा है। यह खतरों से भरा हुआ है। यह तलवार की धार जैसा पैना है, लेकिन बिना कठिनाइयों के कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। और जिस राष्ट्र में, जिस देश की जनता में सभी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने की बुद्धि नहीं होती, वह राष्ट्र या जनता कभी महान् नहीं हो सकते। और इसीलिए मैं कठोपनिषद् के उस कथन को, शक्ति और विवेक के सिद्धान्त को उद्धृत करके अपनी बात समाप्त करूँगा, जिसकी शिक्षा स्वामी विवेकानन्द दिया करते थे :

उत्तिष्ठत् जाग्रत् प्राप्य वरान्निबोधत
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति

अर्थात् उठो, जागो और अपने श्रेष्ठजनों के पास जाकर उनसे सीखो।

दृष्टा कवियों ने उस पथ को दुर्गम कहा है—तलवार की धार जैसा तीक्ष्ण, जिस पर पाँव रखकर चलना महाकठिन है।